SARASWATI—Reg. No. A248

भाग ५] एप्रिल, १९०४ [संख्या ४



वार्षिक मूल्य ३)] सम्पादक-महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।-)

इण्डियन प्रेस, प्रयाग, से छपकर प्रकाशित ।

सूची

सरस्वती

सचित्र मासिकपत्रिका

१९०४

सम्पादक

पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी

प्रयाग

इण्डियनप्रेस से छपकर प्रकाशित

सूचीपत्र।

१९०४

☞ जिन लेखों के पहले * ऐसा चिन्ह है वे सचित्र हैं।

४—जीवन-चरित ।



श्रीमान महाराजा सर प्रभुनारायण सिंह, जी. सी. आई. ई.,
काशीनरेश।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

१९०४

भाग ५] जनवरी १९०४ [संख्या १

झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई।

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।* भवभूति।

सतारा के रहनेवाले पण्डित दत्तात्रेय बलवन्त पारसनीस ने मराठी में रानी लक्ष्मी बाई का चरित लिखकर, बड़ा काम किया है। इसमें सब बातें प्रमाणपूर्वक लिखी गई हैं। ठौर ठौर पर अँगरेज़ी इतिहासकारों के, पारलियामेण्ट के, लार्ड केनिंग के, और सर ह्यू रोज़ आदि के प्रमाण दिये गये हैं। इसके लिखने में लेखक ने बहुत परिश्रम किया है, और बहुत खोज करके प्रमाण इकट्ठे किये हैं। लेखक ने इसमें यह दृढ़तापूर्वक सिद्ध कर दिया है, कि १८५७ ई० के बलवे में अँगरेज़ों का जो वध झाँसी में हुआ था उससे रानी लक्ष्मी बाई का कुछ भी सम्बन्ध न था। इस पुस्तक को पढ़ कर लक्ष्मी बाई का अतुल पराक्रम, उनका अतुल धैर्य और उनकी अतुल वीरता आंखों के सम्मुख आ जाती है। ऐसी वीर नारी इस देश में क्या और देशों में भी शायद ही हुई होगी। सर यडविन आरनल्ड ने लक्ष्मी बाई की उपमा फ़्रांस की प्रसिद्ध वीर बाला जोन आफ आर्क से दी है। जिन सर ह्यू रोज़ ने उन्हें परास्त किया उन्होंने भी उनकी वीरता की प्रशंसा की है। ऐसी विख्यात वीरशिरोमणि लक्ष्मी बाई का ऐसा मनोहर चरित लिखकर पण्डित दत्तात्रेय ने इस देश के साहित्य का बड़ा उपकार किया है। यह कोई ४०० पन्ने की पुस्तक है। इसकी छपाई और जिल्द इतनी अच्छी है कि देखते ही बन आता है। "सरस्वती" के पहले भाग में "दामोदर राव की आत्म कहानी" छपी है। ये दामोदर राव लक्ष्मी बाई के दत्तक पुत्र हैं। इस कहानी के लेखक महाशय ने कहानी की सामग्री चाहे जहां से ली हो; परन्तु है वह इसी पुस्तक की कृपा का फल। इसके अन्त

* गुणवानों में गुणोंही की पूजा होती है। इसका विचार नहीं किया जाता, कि यह स्त्री है अथवा पुरुष; बालक है अथवा वृद्ध।

में यह कहानी छपी है। उसीका यथातथ्य अनुवाद सरस्वती में प्रकाशित हुआ है।

जिनको मराठी में अभ्यास नहीं है उनको, हम, अकेली एक यह पुस्तक पढ़ने के लिए, मराठी सीखने की सिफ़ारिश करते हैं। पाठक, दामोदर राव की कथा सुनही चुके हैं। आज हम पण्डित दत्तात्रेय की कृपा से, दामोदरराव की माता लक्ष्मी बाई का संक्षिप्त चरित सुनाते हैं।

झाँसी के पास ओरछा एक स्थान है। इस समय, इसका अधिक भाग प्रायः उजाड़ पड़ा है। ओरछा के राजा अब टीकमगढ़ में रहते हैं। ओरछा का राज्य बहुत पुराना है। झाँसी पहले ओरछेवालों के आधीन थी। सोलहवें शतक में ओरछा के राजा वीरसिंहदेव ने झाँसी में एक दृढ़ क़िला बनाया। अट्ठारहवें शतक के आरम्भ में छत्रसाल नामक राजा ओरछा में हुआ। उसको, उसके बुढ़ापे में, मालवा के सूबेदार महम्मद खां बंगस ने बहुत तंग किया। जब छत्रसाल को अपना राज्य छिन जाने का भय हुआ तब उसने पहले बाजीराव पेशवा से सहायता के लिए प्रार्थना की। सुनते हैं छत्रसाल ने बाजीराव को दोहों में एक पत्र भेजा। इस पत्र में जो दोहे थे उनमें से एक यह भी था—

जो गति ग्राह-गजेन्द्र की सो गति मेरी आज।
बाजी जात बुँदेल की राखो बाजी लाज॥

बाजीराव ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की और वे बहुत बड़ी सेना लेकर बुँदेलखण्ड की ओर चले। बीस इकीस दिन में वे अपनी सेना समेत बुँदेलखण्ड में दाख़िल हुए। यहां उनका और बंगसखां का सामना हुआ। मराठों की मार के सामने मुसल्मानों के पैर उखड़ गये। बाजीराव की जीत हुई। छत्रसाल का राज्य छिन जाने से बच गया। इस उपकार के बदले छत्रसाल ने एक करोड़ का राज्य बाजीराव को दिया। बाजीराव ने इस राज्य के तीन भाग किये-बाँदा, जालौन और झाँसी। इन तीनों स्थानों में बाजीराव ने तीन सूबेदार नियत किये। जालौन में गोविन्दपन्त बुँदेले; बाँदा में शमशेर बहादुर; और झाँसी में नारो-शङ्कर मोतीवाले। बाजीराव ने झाँसी की सूबेदारी २० लाख की रक्खी और जालौन तथा बाँदा की चालीस चालीस लाख की।

१७५६ इसवी में रघुनाथराव हरी नेवालकर को झाँसी की सूबेदारी मिली। उनकी वीरता और चतुरता आदि गुणों पर प्रसन्न होकर पेशवा ने यह सूबेदारी वंशपरम्परा के लिए उनको दी। रघुनाथराव ने बड़ी योग्यता से ४० वर्ष तक झाँसी की सूबेदारी की। रानी लक्ष्मी बाई के पति के वंश के यही मूल पुरुष हैं। १७९६ ईसवी में रघुनाथराव की मृत्यु काशी में हुई। उनके अनन्तर उनके छोटे भाई शिवराव भाऊ को झाँसी की सूबेदारी मिली। उस समय पूना में पेशवाओं के दरबार में बड़ा गड़बड़ था। यह गड़बड़ स्वतन्त्र होने के लिए अनुकूल समझ कर शिवराव भाऊ ने पेशवाओं को झाँसी के जमाख़र्च का हिसाब भेजना बन्द कर दिया, और ६ फरवरी १८०४ को लार्ड लेक की मारफत अँगरेज़ी गवर्नमेण्ट से सन्धि कर ली। इस सन्धि के द्वारा दोनों पक्षों में मित्रता स्थापन हुई और आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे की परस्पर सहायता करने का निश्चय हुआ। सन्धि के अनुसार शिवराव भाऊ ने गवर्नमेण्ट की अनेक बार सहायता भी की।

१८१४ ईसवी में शिवराव भाऊ की मृत्यु ब्रह्मावर्त में हुई। उनके पीछे उनके बड़े लड़के कृष्णराव के पुत्र रामचन्द्रराव झाँसी के सूबेदार हुए। क्योंकि शिवराव भाऊ के पहले ही कृष्णराव की मृत्यु हो चुकी थी। इसी समय, पेशवा और अंगरेज़ी गवर्नमेण्ट के बीच में एक सन्धि हुई जिसके अनुसार बुँदेलखण्ड की प्रभुता गवर्नमेण्ट को मिली। इस प्रभुता के कारण झाँसी के सूबेदार से गवर्नमेण्ट को दूसरी सन्धि करनी पड़ी। यह सन्धि १७ नवम्बर १८१७ ई० को हुई। इसमें गवर्नमेण्ट ने झाँसी का राज्य रामचन्द्रराव के वंश

में सर्वदा रहना स्वीकार किया। रामचन्द्रराव ने भी गवर्नमेण्ट की, समय समय पर, सहायता की। १८३५ ईसवी में रामचन्द्रराव ने शरीर छोड़ा। उनके कोई पुत्र न था। इसलिए उनकी पत्नी ने अपनी बहन के लड़के कृष्णराव को गोद लिया। यह बात झाँसी के दरबारी लोगों को अच्छी न लगी। उन्होंने दत्त-विधान अशास्त्र ठहराया। इसलिए झाँसी की राजगद्दी का प्रश्न अँगरेज़ी गवर्नमेण्ट तक पहुँचा। वहां से यह फैसला हुआ कि राज्य रघुनाथराव को मिलना चाहिए। रघुनाथ राव, शिवराव भाऊ के दूसरे पुत्र थे और रामचन्द्र राव के सगे चचा थे। इसलिए रघुनाथराव झाँसी के राजा हुए। उन्होंने बहुत दिन तक राज्य नहीं करने पाया। १८३८ ई० के एप्रिल महीने में वे परलोकवासी हुए। उनके मरने पर तीन चार मनुष्यों ने राज्य पाने का दावा किया। परन्तु गवर्नमेण्ट ने शिवराव भाऊ के तीसरे पुत्र और रघुनाथराव के छोटे भाई गङ्गाधरराव को राज्य का अधिकारी माना। उस समय झाँसी के राज्य पर ऋण बहुत था। इसलिए १८४२ ईसवी तक गवर्नमेण्ट ने गङ्गाधरराव के हाथ में राज्य का कारबार न देकर उसे अपने हाथ में रक्खा। १८४२ ईसवी में सब ऋण चुका दिया गया। अतएव २७ दिसम्बर १८४२ को बुँदेलखण्ड के पोलिटिकल एजण्ट स्लीमन साहब ने गङ्गाधरराव से एक और सन्धि करके झाँसी का राज्य उनको सौंप दिया। इस सन्धि के अनुसार बुँदेलखण्ड की अंगरेज़ी फ़ौज के ख़र्च के लिए, गवर्नमेण्ट ने २,२७,४५८ रुपये का इलाक़ा झाँसी के राज्य से अलग निकाल लिया। जो रह गया वह सब गङ्गाधरराव के अधिकार में आया; और वे उसका यथोचित प्रबन्ध करने लगे। यही गङ्गाधरराव रानी लक्ष्मी बाई के पति हैं।

लक्ष्मी बाई का जन्म एक साधारण ब्राह्मण के घर में हुआ। उनके पूर्वज सतारा के पास वाई नामक गाँव मे रहते थे। जब दूसरे बाजीराव पेशवे, ८ लाख साल की पेन्शन लेकर, ब्रह्मावर्त में रहने लगे, तब उनके भाई चिमाजी आप्पा काशी चले गये। उनके साथ लक्ष्मी बाई के पिता मोरो बलवन्त ताम्बे भी थे। उनको चिमाजी आप्पा पेशवे ५० रुपए महीने तनख्वाह देते थे। मोरोपन्त की पत्नी का नाम भागीरथी बाई था। भागीरथी बाई के पेट से १९ नवम्बर १८३५ ईसवी को लक्ष्मी बाई का जन्म हुआ। लक्ष्मी बाई के माता पिता ने उनका नाम मनु बाई रक्खा। महाराष्ट्रों में लड़कियों का जो नाम मा बाप के यहां होता है वह ससुराल में बदल जाता है। उनमें माहेर और ससुराल के अलग अलग नाम रखने की चाल है। इसी चाल के अनुसार मोरोपन्त की मनु बाई गङ्गाधरराव के यहां आकर लक्ष्मी बाई हुईं।

जिस समय लक्ष्मी बाई की उमर कोई तीन चार वर्ष की थी उसी समय उनकी माता का देहान्त हुआ। इसी समय के लगभग उनके पिता को आश्रय देनेवाले आप्पाजी पेशवे की भी मृत्यु हुई। इसलिए, मोरोपन्त ताम्बे काशी छोड़ कर ब्रह्मावर्त चले आये और वहां बाजीराव पेशवे के आश्रय में रहने लगे। वे पेशवा के बहुत निकट रहते थे। बाजीराव ने दो लड़कों को गोद लिया था। एक नाना साहब, दूसरे राव साहब। इन दोनों के साथ लक्ष्मी बाई खेला करती थीं। उनको सतेज और चपल वृत्ति को देखकर सब लोग बहुत प्रसन्न थे। लक्ष्मी बाई ने इन दोनों लड़कों के साथ लिखना पढ़ना भी सीखा। घोड़े पर सवार होना और तलवार फिराना भी उन्होंने नाना साहब और राव साहब के साथ रहते रहते सीख लिया। एक बार नाना साहब ने लक्ष्मी बाई को अपने साथ हाथी पर बिठाने से इनकार किया। इधर लक्ष्मी बाई बैठने के लिए हठ करने लगीं। इसपर उनके पिता ने कहा "तेरे भाग्य में हाथी कहां ?" यह सुन कर उन्होंने आवेश में आकर उत्तर दिया—"मेरे भाग्य में एक नहीं दस हाथी हैं"। और सचमुच ही विवाह होने पर वे अनेक हाथियों की स्वामिनी हुईं।

बाजीराव पेशवा के निकट ग्रैार उनके दत्तक पुत्रों के साथ रहने से लक्ष्मी बाई में, क्षत्रियों के योग्य, अनेक गुणों ने स्थान पाया। जब लक्ष्मी बाई उपवर हुईं तब मोरोपन्त वर ढूंढ़ने लगे। वे कन्हाड़े जाति के ब्राह्मण थे; इसलिए उनको उस ग्रोर कोई वर न मिला। एक बार झाँसी के प्रसिद्ध ज्योतिषी तात्या दीक्षित बाजीराव पेशवा से मिलने गये। उनको मोरोपन्त ने लक्ष्मी बाई की जन्मपत्रिका दिखलाई। ज्योतिषी जी जन्मपत्रिका देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि यह कन्या अवश्य रानी होगी। इस बात को सुन कर मोरोपन्त ने हर्ष के कोई चिन्ह प्रकट किये बिनाही उनसे पूछा कि इसके योग्य झाँसी में क्या कोई वर है? इसपर ज्योतिषीजी ने दुबारा कहा कि यह अवश्य रानी होगी। उन्होंने कहा कि झाँसी के महाराज गङ्गाधर राव कन्हाड़े ब्राह्मण हैं। उनकी पत्नी का देहान्त हुये अभी थोड़ेही दिन हुए। अतएव इस कन्या के विवाह की योजना वहीं होनी चाहिए। मोरोपन्त ने प्रसन्न होकर बाजीराव पेशवा की मारफ़त गङ्गाधरराव से लक्ष्मी बाई के विवाह-सम्बन्ध में बातचीत आरम्भ की। परन्तु मोरोपन्त के समान एक साधारण गृहस्थ की कन्या से उन्होंने विवाह करने की इच्छा न प्रकट की। इसपर पेशवा ने गङ्गाधरराव पर बहुत दबाव डाला। तब उन्होंने अपने दरबार के कई आदमियों को कन्या को देखने के लिए ब्रह्मावर्त भेजा। उन्होंने वहां से लैाटकर कन्या के रूप, सौन्दर्य्य ग्रैार गुणों की बहुत प्रशंसा की। अतएव गङ्गाधरराव ने लक्ष्मी बाई के साथ विवाह करना स्वीकार किया। १८४२ ईसवी के वैशाख में मोरोपन्त लक्ष्मी बाई को लेकर झाँसी आये। वहां लक्ष्मी बाई ग्रैार गङ्गाधरराव का विवाह बड़े ठाठ से हुआ। एक सामान्य गृहस्थ की लड़की झाँसी की रानी होगई। सुनते हैं, जिस समय, विवाह-मण्डप में, लक्ष्मीबाई ग्रैार गङ्गाधरराव का ग्रन्थि-बन्धन होने लगा, उस समय लक्ष्मी बाई ने बहुत ढिठाई ग्रैार समय-सूचकता का एक काम किया। गांठ बांधनेवाले पुरोहित से उन्होंने कहा– "खूब मज़बूत गांठ बाँधना"। इस बात को सुनकर ग्रैार रानी की चतुरता का विचार करके सबको आश्चर्य्य हुआ। खेद है रानी साहब की यह उक्ति सच न निकली। उनका सम्बन्ध उनके पति से, ग्रैार पति के अनन्तर झाँसी से, बहुत जल्द टूट गया।

लक्ष्मी बाई के साथ विवाह हो जाने पर महाराज गङ्गाधरराव ने मोरोपन्त को अपने दरबार में रख लिया ग्रैार ३०० रुपये महीने उनकी तनख्वाह नियत कर दी। इस समय मोरोपन्त की उमर ३२ वर्ष की थी। उनकी पहली स्त्री का देहान्त हुए कई वर्ष हो चुके थे। यहां पर उन्होंने गुरसराय के रहनेवाले वासुदेव शिवराव खानवलकर की कन्या से दूसरा विवाह किया। उनकी इस दूसरी पत्नी का नाम चिमा बाई हुआ। १८९६ ईसवी तक चिमाबाई के जीवित रहने का पता लगता है। हम नहीं कह सकते कि इस समय वे जीवित हैं या नहीं। कालपी के पास एक गांव में वे रहती रही हैं। उन्होंने लक्ष्मी बाई के सम्बन्ध में अनेक बातें पण्डित दत्तात्रेय को बतलाई हैं।

महाराज गङ्गाधरराव ने अपने राज्य का अच्छा प्रबन्ध किया। उन्होंने ४ तोपख़ाने, ५००० पैदल ग्रैार ५०० सवार रक्खे। १८५० ईसवी में उन्होंने काशी-यात्रा की। उनके आदर सम्मान के लिए, सब कहीं, गवर्नमेण्ट ने यथोचित प्रबन्ध किया। काशी, प्रयाग ग्रैार गया में उन्होंने दान धर्म्म भी खूब किया। यात्रा से लैाट आने पर, अर्थात् १८५१ ईसवी में, लक्ष्मी बाई के पुत्र हुआ। परन्तु वह तीनही महीने जीवित रहा। उसके मरने से महाराज गङ्गाधरराव को अपार दुःख हुआ।

जब से पुत्रशोक का धक्का लगा तबसे महाराज गङ्गाधरराव की प्रकृति बिगड़ती चली। वे बीमार रहने लगे। क्रम क्रम से बीमारी बढ़ गई। १८५३ ईसवी के आक्टोबर महीने में वे बहुत बीमार हुए। जब उनके जीने की आशा न रही तब उन्होंने अपने घराने के वासुदेवराव नेवालकर के लड़के



झांसी का क़िला।



झांसी की रानी का महल।

आनन्दराव को गोद लिया और उसका नाम दामोदरराव रक्खा। यह दत्तक-विधान यथा-शास्त्र हुआ। विधान के समय सब दरबारी लोग हाज़िर थे। बुन्देलखण्ड के असिस्टेण्ट पोलिटिकल एजण्ट मेजर यलिस और कैप्टन मार्टिन को भी निमन्त्रण दिया गया था। वे भी दत्तक-विधान के समय उपस्थित थे। दत्तक-विधि हो जाने पर महाराज गङ्गाधरराव ने अपने दीवान नरसिंहराव से मेजर यलिस के सामने ही गवर्नमेण्ट के नाम एक ख़रीता लिखवाया और उसे अपने ही हाथ से मेजर यलिस को दिया। यह ख़रीता १९ नवम्बर १८५३ को लिखा गया। इसमें और, और बातों के सिवाय गङ्गाधरराव ने दामोदरराव को गोद लेने की भी बात लिखी और उन पर कृपा रखने के लिए गवर्नमेण्ट से प्रार्थना की। जब तक दामोदरराव वयस्क न हों तब तक झाँसी के राज्य की अधिकारिणी लक्ष्मी बाई को मानने के लिए भी गङ्गाधर राव ने विनय किया। इस ख़रीते को लेकर मेजर यलिस ने महाराज से कहा कि वे उनकी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे।

अनेक प्रयत्न होने पर भी महाराज गङ्गाधर राव की प्रकृति न सुधरी। २१ नवम्बर १८५३ को उनका शरीर छूट गया। "मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्" यह कालिदास की उक्ति राजा, प्रजा, स्त्री, पुरुष सब के लिये एक सी है। मरना मनुष्यों का धर्म है। उससे कोई नहीं बच सकता; गङ्गाधर राव को भी, इस प्राकृतिक नियम के अनुसार यह संसार छोड़ जाना पड़ा।

गङ्गाधरराव के मरने पर मेजर यलिस ने, झाँसी के क़िले में रक्खे हुए राज्य के ख़ज़ाने में, ताले लगा दिये और उसकी रक्षा के लिए फ़ौज रख दी। उधर २५ नवम्बर को बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजण्ट मेजर मालकम ने गवर्नमेण्ट को महाराज गङ्गाधरराव का ख़रीता भेजा और उसके साथही एक लम्बी रिपोर्ट भी भेजी। रिपोर्ट में उन्होंने लिखा कि गवर्नमेण्ट की आज्ञा बिना गङ्गाधर राव या उनकी रानी को दत्तक लेने का अधिकार नहीं है। उन्होंने झांसी के राज्य को सरकारी राज्य में मिला लेने का इशारा किया, और रानी लक्ष्मी बाई को ५००० रुपये मासिक देने की सिफ़ारिश की।

जिस समय मेजर मालकम की रिपोर्ट कलकत्ते पहुँची उस समय गवर्नर जनरल लार्ड डलहौसी अवध में थे। वहां से जब वे वापस गये तब उन्होंने झाँसी के काग़ज़ पत्र देखे। देखकर २७ फ़ैब्रुअरी १८५४ को उन्होंने गङ्गाधरराव के दत्तक-विधान को नामंज़ूर किया और झाँसी के राज्य को अँगरेज़ी राज्य में मिलाने की आज्ञा दी। यह आज्ञा जब पोलिटिकल एजण्ट के पास पहुँची तब उन्होंने १३ मार्च १८५४ को झाँसी के अँगरेज़ी राज्य में मिला लिए जाने की नोटिस जारी की। इस विषय का ख़रीता देने के लिए जब मेजर यलिस रानी लक्ष्मी बाई के पास गये तब उन्होंने अपार शोक किया। उनका कण्ठ दुःख से रुद्ध होगया। उन्होंने करुणास्वर से केवल इतनाही कहा—"मेरी झाँसी न दूँगी!" जिन पोलिटिकल एजण्ट मेजर मालकम ने पहले झाँसी के प्रतिकूल रिपोर्ट गवर्नमेण्ट को की थी, उन्होंने पीछे से, न जानें क्या समझ कर, अनुकूल रिपोर्ट भेजी। परन्तु यह अनुकूल रिपोर्ट एक दिन देर से पहुँची। उसके पहुँचने के पहलेही लाट साहब ने झाँसी का फ़ैसला कर दिया था!

लार्ड डलहौसी ने आज्ञा दी कि रानी लक्ष्मी बाई को ५००० रुपये मासिक मिलै और ख़ज़ाने में जो रुपया हो वह गवर्नमेण्ट में जमा रहै। जब दामोदरराव वयस्क हों तब वह उनको मिलै। इसके सिवाय और जो कुछ सम्पत्ति हो वह दामोदरराव के लिए रानी साहब के स्वाधीन रहै। इसके अनुसार कोई ६ लाख रुपये, जो झाँसी के ख़ज़ाने में था, गवर्नमेण्ट ने अपने यहां जमा किया और सोना, चाँदी, आभूषण आदि जितना सामान था वह रानी साहब को दामोदरराव के लिए मिला। रानी साहब ने सरकारी आज्ञानुसार क़िला छोड़

दिया और शहर के राजमन्दिर में वे रहने लगीं। गवर्नमेण्ट ने क़िला अपने आधीन कर लिया और वहां एक पल्टन रख दी। वहां की युद्ध सामग्री तालाब में फेंक दी गई और राज्य की पुरानी तोपें निरुपयोगी कर डाली गईं।

रानी लक्ष्मी बाई ने ५,००० रुपये मासिक लेना अस्वीकार किया। उन्होंने विलायत में कोर्ट आफ़ डाइरकृर्स से लिखा पढ़ी करना चाहा। उसके लिए उन्होंने ६०,००० रुपये देकर बाबू उमेशचन्द्र बैनर्जी नामक एक बङ्गदेशी सज्जन और एक यूरोपियन साहब को लण्डन भेजा। परन्तु इसका पता नहीं लगता कि इन दोनों पुरुषों ने क्या किया; कहां गये, कब गये, कब आये और उनके जाने का क्या फल हुआ। इन वकीलों का कोई समाचार नहीं मिला; परन्तु कोर्ट आफ़ डाइरेकृर्स की आज्ञा का समाचार अवश्य मिला। उन्होंने २ आगस्ट १८५४ ईसवी को लार्ड डलहौसी की काररवाई मंज़ूर कर ली और झाँसी का राज्य सर्वदा के लिए अँगरेज़ी राज्य में मिल गया। झाँसी में कमिश्नरी स्थापित हो गई।

रानी साहब को अपनी फ़ौज और अपने दरबारियों को बिदा करना पड़ा। उनका काम काज उनके पिता मोरोपन्त ताम्बे और लक्ष्मणराव बाण्डे करने लगे। उनको अपने दिन बड़ी दैन्यावस्था में बिताने पड़े। वे सबेरे उठती थीं और स्नान करके आठ बजे तक पार्थिव पूजा करती थीं। फिर वे अपने महल के चौक में घोड़े फेरती थीं। ११ बजे फिर स्नान करके वे भोजन करती थीं और तीन बजे तक ११०० राम नाम लिखती थीं। शाम से लेकर आठ बजे तक वे पुराण सुनती थीं। इसके अनन्तर वे फिर स्नान करती थीं, और पूजन करके, भोजन हो चुकने पर, सोती थीं।

[असमाप्त।

हेमन्त।

[१]

सुन्दर शोभित सुखद शरद हेमन्तहि भेँटो आय,
जिमि बालक विलोकि माताको गिरै गोद में धाय।
जानि परै जमुना जल पैठत पैर गये कटि दूर,
"सीसी" करत किनारे आवैं; जाड़ा है भरिपूर॥

[२]

पहले से नहिँ कमल खिलैं अब, निशि में परै तुषार;
स्वच्छ-स्वेत-हिमयुक्त-हिमालय दर्शन योग बहार।
सूरज भयो छपाकर जानो, धूप गई पतराय;
मनहुँ शीत भयभीत याहि लखि, वारिद लेत छिपाय

[३]

हरित खेतमय गाँवन भीतर, हिमकणभीगी दूब,
मटरफली, अरु कोमलमूली, मीठी लागै खूब।
ज्वार, बाजरा, मूङ्ग, मसीना, मोठ, रमास, गुवार,
सन, तिलआदिक, अरहरतजि, सबकटिआयेघरभार

[४]

रबी जहां सींचो जावै, तहँ गेहूं, जौ, लहराँय;
सरसों सुमन प्रफुल्लित सोहैं, अलिमाला मडराँय।
प्रकृति दुकूल हरा धारणकर, आनन अपना खोल,
हावभाव मानहुँ बतलावै, ठाढ़ी करै कलोल॥

[५]

बरहा खोदत श्रमी कृषकवर, जल नहिँ कहुँ कढ़िजाय,
खुरपी और फांवरा कर गहि क्यारी काटहिँ धाय।
चरसा गहैं "रामआये" कहि, गाय गीत ग्रामीन।
जीवन हेत देत खेतन कहँ जीवन नित्य नवीन॥

[६]

सीर समीर तीर सम लागत, करत करेजे पीर,
दिन छीजत रजनी बाढ़त, जिमि द्रुपद सुताको चीर।
धुआं न चैन लैन छिन देवै, अश्रु बहावैं नैन;
छाती तले अँगीठी सुलगे, ताहि उठावैं पै न॥

[७]

ज्वाला तापि, दुलाई ओढ़ैं, रहैं धूप में जाय,
चाय भरा सुविशाला प्याला पीवैं हिय हरषाय।
साल दुशाला धारैं निशिदिन, गरम मसाला खात,
सीत-कसाला-भाला उरमें लगै, न पाला जात॥

[८]

मृग मदादि सौरभ सुखकारक सेवन करैं सुहाय,
भोजन समय कम्प तउ होवै, हाथ जाहिँ ठिठुराय।
पान खाहिँ डिबिया भर भरके, तोहू दुख न नसाय,
बाला हिये लगाये बिन कब शीत कसाला जाय?

[९]

आवैं युवक पाठशाला जब, पहन कोट पतलून;
मोज़े डाट, बूट खटकावत, शीत लगै तउ दून।
"पेड़ू" अथवा और "सेगरट" "सेफमैच" से बाल,
यञ्जिन का सा धुआं उड़ावैं, तोभी बुरा हवाल॥

[१०]

जर जर देह, दीनजन दुःखित, कँप कँपात, बिलखात
हाट, बाट, अरु घाट घाट पर माँगत, खात लखात।
"अबकी कठिन प्राणरक्षा है", कहि कहि के यह बात,
बड़े कसाई, अति दुखदाई, जाड़े से इठि जात॥

[११]

निस्सहाय, निर्बल, इन आरत भारतवासिन ओर,
देशहितैषी, धनी, धार्मिक, फेरौ लोचन-कोर।
हे हेमन्त, हिमाचलवासी! अधिक कष्ट जनि देहु,
विनय सत्यनारायण की यह इतनी तुम सुनि लेहु॥

सत्यनारायण।

रहिमन-विलास।

[सरस्वती, भाग ४ संख्या ९ के आगे]

ज्यों रहीम सुख होत है बढ़े आपुने गोत।
त्यों बड़री अँखियानि लखि अँखियनकौं सुख होत॥
अँखियनकौं सुख होत बड़ाई नैनन देखे।
पाइ सजाती बिहँसि मिलत कुल गुन बिनु लेखे।
ज्यों ज्यों ये मिलि हँसैं बिबस मन होय सु त्यों त्यों॥
उलझन औरहि और छुड़ाओ इनको ज्यों ज्यों॥६६

मनसिज माली की उपज कहि रहीम नहिँ जाय।
फल श्यामा के उर लगे फूल श्याम उर आय॥
फूल श्याम उर आय लगे हिय मोद बढ़ावन।
प्रेमबेलि डहडही सदा दोऊ मनभावन॥
भई प्रफुल्लित और फलित मोहत सोभा निज।
प्रेम अमृत सौँ सीँचि बढ़ायो है एहि मनसिज ६७

जिन रहीम तन मन लियो कियो हिए में भौन।
तिनसौं सुख दुख कहन की रही कथा अब कौन॥
रही कथा अब कौन जौन हिय माहिँ छिपाइय।
मनहिँ लियो अपनाइ वस्तु अब कौन दुराइय॥
पय पानी सों मिलै दास तू तजि छल बल किन।
करै न कछू दुराव लियो है तेरो मन जिन॥६८

यें न रहीम सराहिए देनलेन की प्रीत।
प्रानन बाजी राखिए हार होइ कै जीत॥
हार होइ कै जीत मीत हित टरैँ न सपने।
प्रान हाथ ही लिए रहैं प्रीतम हित अपने॥
एक प्रेम तैं काम आस कछु चित्त न धरते।
जग सब खोजे दास मिले बिरले जु मित्र ये॥६९

हरि रहीम ऐसी करी ज्यों कमान सरपूर।
खैंचि आपुनी ओर कौं डारि दियो पुनि दूर॥
डारि दियो पुनि दूर भ्रमत लख चौरासी यौं।
अपनो जन कहवाइ करावत उपहासी क्यों॥
नाथ! न्याय गुन भूलि दया गुन सहज चित्त धरि।
लीजै दास उबारि अहो करुणा निधान हरि॥७०

करत निपुनई गुन बिना रहिमन निपुन हजूर।
मानों टेरत बिटप चढ़ि एहि प्रकार हम कूर॥
एहि प्रकार हम कूर आपुही प्रगट जतावै।
जादू वहै बखान सीस चढ़िकै कबुलावै॥
गुन पुरुषारथ हीन फैल ये बहु आडम्बर।
दास अंत खुल जाय चतुरई लाख क्यों न कर॥७१

नहिँ रहीम कछु रूप गुन नहिँ मृगया अनुराग।
देसी स्वान जो राखिए भ्रमत भूख ही लाग॥
भ्रमत भूख ही लाग काम नहिँ कबहुँ आवैं।
भौं भौं करिकै कान फोरि चित दुचित करावैँ॥
जो देखैं सो हँसै धन्य है इनकी रीझहिँ।
ताहि साथ जिनि रखौ रूप गुन कछु जिनमें नहिँ॥७२

कागद को सो पूतरा सहजहि में घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखौ सोऊ खैँचत बाय॥
सोऊ खैँचत बाय अमर अपने को मानै।
द्वै दिन की चाँदनी ऐँठि जग तृन सम जानै॥

अरे मूढ़ ! निज रूप समुझु करु सुकृत कर्म जो।
नस्वर तन जिनि भूलु पूतरा कागद को सो ॥७३

कहि रहीम इक दीप तें प्रगट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै दृग दीपक जरु दोय ॥
दृग दीपक जरु दोय भरयो हिय नेह खजानो।
दोय दोय के मिलत झलक बाइस गुन मानो ॥
चाहत जितो छिपाव तितो औरहु वह प्रगटहिं।
हृदय भाव वर बसहिं नैन ये दास देत कहि ॥७४

तरवर फल नहिं खात हैं सरवर पियें न पान।
कहि रहीम पर काज हित संपति सुचहिं सुजान ॥
संपति सुचहिं सुजान देह पर कारज धारहिं।
करिकै पर उपकार बचन नहिं कबहुं उचारहिं ॥
और आप दबि जाहिं दास जे अहैं श्रेष्ट नर।
फल सों लदि कै सदा झुकत जिमि धरनी तरवर ७५

जिहि रहीम चित आपनो कीनो चतुर चकोर।
निसि बासर लागी रहै कृष्णचन्द्र की ओर
कृष्णचन्द्र की ओर सदा मो मन अनुरागै।
ज्यों मयूर घन चातक स्वाती ही सों पागै ॥
ऐसेही मन लग्यो रहै नित चरन कमल तिहि।
ब्रजयुवतीमनमोरनचतलखिमुखसुन्दरजिहि ॥७६

रीति प्रीति सब सों भली बैर न हित नित गोत।
रहिमन याही जनम की बहुरि न संगति होत ॥
बहुरि न संगति होत कहां तुम कहं वे बिछुरैं।
कहां कहां तें आइ आज एकत ह्वै बिचरैं ॥
जीवन है दिन चार कलह अरु द्वेष तजैा अब।
हिलमिलसुखसोंरहैादासकरिरीतिप्रीतिसब ॥७७

कहि रहीम धनि बढ़ि घटै जात धनिन की बात।
घटै बढ़ैं तिनको कहा घास बेचि जे खात ॥
घास बेचि जे खात रहत निर्द्वन्द सदाही।
धनिकहिं टेढ़ी परत होत जैा तनिक तबाही ॥
साक मिटै सब भेद बात मैं परै जु तनकहि।
उद्यम जीवी लोग नेकु जिय मैं नहिं संकहि ॥७८॥

दुरदिन परे रहीम कहि भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं बित हानि को जो न होय हित हानि ॥
जो न होय हित हानि कहा बित हानि बिगारै।
बित नित आवै जाय भाग्य बस सबै सहारै ॥
दास लेत मुख फेरि देखि कछु लै यह मांगि न।
भए बिगाने मीत सतावत औरहु दुरदिन ॥७९

को रहीम पर द्वार पर जात न जिय पछितात।
संपति को सब जात हैं बिपति सबहिं लै जात ॥
बिपति सबहिं लै जात समुझि ओ संपति वारे।
करु न निरादर बहू जीव है सदस तिहारे ॥
आयो तुव ढिग हारि आस बिनु करु न बनै तो।
ढलती फिरती छांह सुफल करु निज धन पद को॥८०
श्री राधाकृष्णदास।

अज्ञान और विज्ञान*।

[१]

आजकल लोग विज्ञान विज्ञान पुकारा करते हैं; परन्तु विज्ञान से क्या लाभ है, सो बहुत से लोग नहीं समझते। वे विज्ञान को नीरस जान उससे दूर भागते हैं। परन्तु यह उन का भ्रम है। सब विषयों का कुछ कुछ ज्ञान होना चाहिए। आज मैं आप लोगों को वह कथा सुनाता हूं जिसे एक बार सुनकर आप जानेंगे कि मुझे अज्ञान भारतवासी पाकर विज्ञान ने कैसा रुलाया था।

ऊंची शिक्षा के अनन्तर ऊंचा पद पाने की आशा से कालेज छोड़कर मैं विलायत गया। लण्डन में छ सात महीने ही रह कर मुझ से बहुत से साहब लोगों से जान पहिचान हो गई। उन लोगों के साथ रहते रहते मैं भी एक तरह का साहब बन गया। विलायत से अब मैं लैाट आया हूं; परन्तु देशी वेश का आदर न देख अब भी मैं साहब ही बना रहता हूं। रङ्ग मेरा कुछ काला अवश्य है। पर नित्य दो तीन बार साबुन मलता हूं; इससे बहुत कुछ कसर निकल जाती है।

हां, तो मेरी कथा सुनिए। मैं, कह चुका हूं, कि लण्डन में बहुत से साहब और मेमों से मेरा

* 'विज्ञानदर्पण' से अनुवादित।

परिचय हो गया था। उन्हीं में से हार्वी नाम के एक यञ्जीनियर साहब से मेरी बड़ी मित्रता हो गई थी। वह गोरा अंगरेज़ और मैं काला भारत-वासी, दोनों में इस बात का तनिक भी अन्तर न था। हार्वी सरकारी नौकर था। कुछ दिनों में मुझे समाचार मिला कि उसकी चाची मर गई। चाची के कोई बालबच्चा नहीं था। इस कारण उसका सारा-मालमत्ता हार्वी ही को मिला। हार्वी ने भी तुरन्त नौकरी छोड़ कर चाची के घर की राह ली। चलते समय वह मुझसे कह गया, देखो परीक्षा के उपरान्त तुम मेरे यहां छुट्टियों में अवश्य आना। कम से कम १०।१५ दिन मेरे यहां तुम्हें रहना होगा। मैंने भी उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। मैंने पूछा, तुम्हारा स्वभाव इतना परिश्रमी है; अब तो तुम्हारे पास कुछ काम नहीं रहा; अब घर जाकर तुम क्या करोगे? मेरे मित्र ने उत्तर दिया, "क्यों, काम की क्या कमी है? दूसरे के लिये काम नहीं करना है तो क्या आलस्य ही में दिन बिताना होगा? जब मेरे घर जाओगे तब देखोगे कि मैं उसे कलों से कैसे सजाऊंगा"। हार्वी मुझ से शेकहैंड करके चला गया।

धीरे धीरे ७।८ महीने जलप्रवाह की तरह निकल गये। परीक्षा भी हो गई। ठीक उसी समय हार्वी का पत्र फिर आया। उसने मुझे फिर बड़े आदर से न्यौता दिया। निदान एक दिन मैं, एक पोर्टमैन्टो में अपने वस्त्रादिक लेकर, रेल पर बैठ हार्वी से मिलने गया। हार्वी का घर लण्डन से चालीस मील पर है। वह मेरे लिये स्टेशन पर खड़ा था, और मुझे देख कर बड़ा आनन्दित हुआ। हम दोनों उसकी गाड़ी में बैठ कर चले।

कुछ दूर जाकर हार्वी ने कहा, "देखो, वह मेरा घर देख पड़ता है। उस बगीचे के चारों ओर जो मकान देख रहे हो, वे मेरे मित्रों के हैं। मैंने अपने घर से इन सबों के घर में टेलीग्राफ लगा दिया है। जिस दिन मुझे कोई काम नहीं रहता, मैं तार से अपने एक मित्र को बुला भेजता हूं। वह, आकर मेरे साथ शतरञ्ज खेलता है। नहीं तो किसी दूसरे से पूछता हूं कि आओ, आज शिकार खेलने चलें।"

इतने में हमलोगों को गाड़ी फाटक के पास पहुची। हार्वी ने गाड़ी रोक दी। फाटक बन्द था; उसे खोलने के लिये मैं गाड़ी से उतरने लगा; परन्तु हार्वी ने मुझे रोका। फाटक आप से आप खुल गया। मैंने आश्चर्य में आकर कहा, वाह, यह तो बड़े मज़े की बात हुई!

हार्वी ने कहा, क्यों, क्या तुम्हारी समझ में यह नहीं आया? फाटक के दस हाथ बाहर की ओर एक लोहे की चद्दर है, उसपर गाड़ी चढ़ते ही, वह कुछ नीचे दब गई। उस चद्दर के साथ फाटक के नीचेवाले पहिए से भूमि के नीचे होकर एक छड़ लगा हुआ है। जब लोहे की चद्दर दब गई, छड़ ने पहिया छोड़ दिया। फाटक में स्प्रिङ्ग लगी है। वह आप से आप खुल गया। भीतर की ओर भी ठीक उसी भांति एक चद्दर बिछी है; उसपर गाड़ी चढ़ते ही फाटक फिर बन्द हो जायगा। मैंने कहा ऐसा मैंने कभी नहीं देखा था। दरबान तुम्हें नहीं रखना पड़ता!

गाड़ी सायबान के नीचे जा खड़ी हुई। मैंने देखा एक साईस खड़ा है और एक नौकर भीतर के किवाड़ खोल रहा है। हार्वी ने कहा, देखो, मैंने किसीको नहीं बुलाया; पर ये लोग आने अपने काम पर आ पहुँचे। फाटक खोलने की लोहे की चद्दर के साथ दो बिजुली के तार लगे हैं। उन्होंने जाकर अस्तबल और नौकरों के घरों की घण्टियां बजा दी हैं। लोहे की चद्दर जब नीचे दब गई, उसी समय, दोनों घण्टियां बजीं; और इनलोगों ने जान लिया कि कोई हमारे यहां आया है।

मैंने कहा यह तो बहुत अच्छा है। किसीको आकर तुम्हारे द्वार पर खड़ा नहीं रहना पड़ता।

हमलोग मकान के भीतर गये। हार्वी की बहिन पास की एक कोठरी में थी। वह हम लोगों को देखकर हमारे पास उठ आई। हार्वी ने उससे

मेरा परिचय करा दिया। मिस हार्वी को देखने से यह नहीं जान पड़ता था कि वह हार्वी की बहन है। उसका वयस अनुमान ५० वर्ष होगा। उसमें स्त्रियों की कोमलता कुछ भी नहीं है। उसने यथासाध्य मीठे स्वर से पूछा, "महाशय, आने में आपको कुछ कष्ट तो नहीं हुआ?" इसी भाँति और दो चार बातों के उपरान्त किसी काम की उसे सुध आ गई और वह वहां से उठ कर चली गई।

ऊपर जानेवाली एक सीढ़ी की बाईं ओर, मैंने देखा, कि एक मोटे लोहे के छड़ में बहुतसी लोहे की टेढ़ी टेढ़ी सींकें लगी हैं। एक एक सींक में एक एक ब्रश लगा हुआ है। इस कल का प्रयोजन न समझ कर मैंने पूछा, क्यों भाई, हार्वी, यह क्या है?

हार्वी—क्या? ओः! यह ब्रश (झाड़ने की कल) है। आओ, तुम्हें समझा दूं। यह जो, भूमि से फुट भर ऊंचे चबूतरे पर, चौकी धरी है उसीपर खड़ा होना पड़ता है। उसपर खड़े होते ही चौकी आपसे आप नीचे उतरने लगती है; और उतरते समय वह घड़ी के भीतरवाले पहियों के से कई चक्रों को चला देती है; इससे ब्रश लगी हुई टेढ़ी टेढ़ी सींकें घूमघूम कर तुम्हारे कोट, पतलून, जूते, सब झाड़ देती हैं। परन्तु टोपी झाड़ने के ब्रश, वे जो ऊपर हैं, सबसे अधिक मज़ेदार हैं। देखो इनका आकार देखने में ठीक बीच से दो भागों में काटे हुए हैट (टोपी) के बक्स के बराबर है।

मैंने कहा, बिलक्षण है; अद्भुत है; एक बार इस पर चढ़ो तो सही।

हार्वी जाकर उस चौकी पर चढ़ा। चढ़ते ही सब ब्रश घूम घूम कर उसकी देह पर के वस्त्र झाड़ने लगे। परन्तु ऊपरवाले टोपी के ब्रश ज्यों के त्यों रहे। जब नीचे के ब्रशों का आधा काम हो गया तब ऊपरवाले ब्रश नीचे उतर आये और जल्दी जल्दी घूम घूम कर दस बारह चक्कर में हार्वी के सिर पर की टोपी को झाड़ कर अलग हो गये।

हार्वी ने उतर कर कहा, कैसे मज़े का मेशीन है? आओ, तुम भी अपने वस्त्र झड़वा लो।

मैंने कहा, नहीं, नहीं, अभी रहने दो।

हार्वी—तब फिर थोड़ा ठहर जाओ। मैं एक बार देख आऊं कि भोजन के लिए क्या देर है।

हार्वी के चले जाने पर मैं उस झाड़ने की कलको देखने लगा। मन में आया कि यह कैसे चलता है मैं भी एक बार देखूं। चारो ओर मैंने देखा तो कमरे में कोई भी नहीं था। मैं चौकी पर चढ़ गया; सब ब्रश बहुत अच्छी तरह मेरे वस्त्र झाड़ने लगे। और टोपी के ब्रश—अरे बापरे! यह क्या आपत्ति आ पड़ी! ओः! मेरे प्राण निकलने लगे!

मेरे सिर पर टोपी नहीं थी सो बात मैं भूल गया था। ओः! टोपी के दोनों ब्रश मेरे मुँह से जुड़ गये। भीतर के दोनों चिमटों से मेरे दोनों कानों को अच्छी भाँति पकड़ कर वे मेरे मुह के चारों ओर घूमने लगे। मुझे जान पड़ा कि अब नाक पर चमड़ा नहीं बचेगा। मैंने सोचा कि सिर नीचा करके उतर जाऊं। परन्तु ज्योंही मैं नीचा होने लगा, त्योंही पीछे से कपड़े झाड़ने वाले ब्रशों ने इतने वेग से दो धक्के दिये कि मैं तुरन्त फिर सीधा होकर खड़ा हो गया। सौभाग्य से यन्त्रणा का शीघ्रही अन्त हो गया। उतर कर देखा कि हार्वी एक कोने में खड़ा होकर हँस रहा है। उसकी हँसी बन्द ही नहीं होती थी। मैंने भी एक सूखी हँसी हँस कर सामने के एक दर्पण में अपना मुख देखा। पहिले तो मैं हँसने की चेष्टा कर रहा था; परन्तु अपना मुख देख कर और मुझसे न रहा गया। मैं भी खब हँसने लगा। सिर पर के बाल सिमट कर मन्दिर की चोटी से हो गये थे, और मेरे प्यारे व्हिस्कर्स (लम्बे मोछ) का एक अंश कलही में रह गया था!

हार्वी ने कुछ हँसना बन्द करके कहा, "क्या तमाशा है! कल ठीक मेरे ही नाप से लगा है यह तुमने नहीं सोचा। श्रौर टोपी खोल कर भला क्यों चढ़ने गये?" मैंने कहा, बस, रहने दीजिए; मैं खूब झड़ गया।

तो आओ; अब वस्त्र बदलो; भोजन तैयार है। यों कह कर हार्वी मुझे ऊपर की एक कोठरी में ले गया। उसने कहा, जितने दिन यहां रहोगे, यह कोठरी तुम्हारी है।

मैंने कहा, खूब, यह कोठरी तो बहुत सुन्दर है।

हार्वी—कोठरी बहुत बड़ी है। रात को अकेले इतनी बड़ी कोठरी में रहते तुम्हें डर लगे तो मैं इस छोटे पलँग पर आकर सोऊंगा।

मैंने कहा, नहीं, नहीं, अब मुझे बड़े कमरे में अकेले सोते डर नहीं लगता।

हार्वी ने हंसकर कहा—बड़ी बात है। इस कोठरी में कई कलें हैं; तुम्हें दिखाए देता हूं। अँधेरा हो चला। पहले गैस को जलादें। मेरे यहां गैस आपही जलता है; कोई उसे जलाता नहीं। नीचे कई बैटरी लगी हैं। बैटरी के तार सब गैस से जुड़े ह। इस हड्डी वाले मुट्ठे को दबाते ही बैटरी चलने लगेगी; एक तार गैस की सब चाभियां खोल देगा; श्रौर बिजुली से गैस जलने लगेगा।

यों कह कर हार्वी ने मुट्ठे को दबाया। देखते देखते कमरे के सब गैस दीपक जल उठे। अचरज से मेरी बोली बन्द हो गई। मैंने पूछा, अच्छा, उतने ऊंचे पर एक गैस क्यों लगा है? हार्वी बोला उस पर पीतल की एक मोटी सींक देखते हो। वह पीतल की नहीं है। कई दूसरे धातुओं से वह बनी है, श्रौर ऐसे ढँग से बनी है कि तनिक गरमी पाते ही टेढ़ी हो जाती है। सींक टेढ़ी ··

हार्वी की बात शेष नहीं हो पाई थी कि कमरे की सब झिलमिलियां बन्द हो गईं; खिड़की के पर्दे गिर गये। मैं मानो भूतों की हँवेली में आगया। हार्वी ने मुझे आश्चर्यपूर्ण देख कर हँसते हुए कहा "वह सींक गरमी से टेढ़ी होकर छत से लगी रहती है। छतपर दबाने की एक कल है; उसे यह दबाए रहती है। झिलमिली खुली रहने पर एक कमानी से अटकी रहती हैं। दबाने की कल के दबते ही कमानी ढीली हो जाती है; श्रौर दूसरी कमानी से झिलमिली बन्द हो जाती हैं। श्रौर देखो झिलमिली बन्द होते ही पर्दे की रस्सी खिसक कर पर्दा गिर जाता है।

मैंने पूछा, वह एक हथकल लगा है; वह भी गैस जलाने के मुट्ठे के समान है। वह जिसपर A लिखा है। उससे क्या प्रयोजन?

हार्वी—A का अर्थ (alarm) एलार्म है। प्रत्येक कोठरी में एक एक एलार्म है। छत पर एक बड़ा घण्टा है। नीचे की एक बिजलीवाली बैटरी से उस घण्टे का योग है। हथकल दबाते ही बैटरी चलती है श्रौर घण्टे से बड़ा नाद होने लगता है। घण्टे का शब्द सुनते ही पड़ोस के लोग समझ जाते हैं कि कोई भारी विपत्ति आ पड़ी है। परन्तु आज तक घण्टा बजाने का प्रयोजन नहीं हुआ।

उसने फिर कहा; इस कोठरी में दो कलें श्रौर हैं। उस कोने में जो पर्दा पड़ा है, वहां स्नान करने का स्थान है। उसके भीतर सिर पर एक बड़ा सा निर्झर (Shower bath) है। भीतर घुसते ही पानी झरने लगता है। कोई कल दबानी नहीं पड़ती। कल सबेरे चाहो तो वहीं स्नान करना।

मैंने कहा—अच्छा, वैसाही करूंगा। मैं समझता हूं कि अपने सब कल वल तुमने इसी कमरे में लगा रक्खे हैं।

हार्वी—नहीं, हर कोठरी में कुछ न कुछ है। अच्छा देख तो आओ कल में जल है कि नहीं।

मैं—है, अभी आया है।

हा—अभी नहीं आया है। भीतर जाते समय अपने दाहिने पैर से तुमने एक कल दबाया हैं; उसी से जल गिरने लगा; श्रौर लौटती बार दूसरा कल पैर से दबा दिया; उससे जल का गिरना बन्द हो गया।

मैं—बड़ी बुद्धिमानी का काम है। बैठे बैठे यही सब करते रहे हो!

हा—यहां एक और वस्तु है। बिछौने के पास तीन नलियां देख रहे हो? वे बातें करने की हैं। जिसपर १ लिखा है, वह मेरी कोठरी तक गई है; बाक़ी दो में से एक मेरी बहिन की कोठरी और दूसरी लिडी की कोठरी को गई है। इन दोनों का तुम्हें कोई प्रयोजन नहीं पड़ेगा। लिडी को चाहे चाय लाने के लिए कह सकते हो।

मैं—लिडी कौन है? क्या दासी है? देखने में सुन्दरी है न?

हा—क्यों, दासी हो तो क्या सुन्दरी नहीं हो सकती? इतनी जल्दी उस ओर तुम्हारी दृष्टि गई? देखना, उससे कोई हँसी मत करना; यहां हँसी दिल्लगी न चलेगी।

मैं—यह बात तुमने क्यों कही? क्या तुम मेरा चालचलन नहीं जानते हो?

हा—तुम्हारा चालचलन मैं अच्छी तरह जानता हूं। तुमसे मैं केवल हँसी कर रहा था। अब वस्त्र बदल डालो। भोजन तैयार है। मैं भी वस्त्र बदलने जाता हूं।

वस्त्र बदल कर मैंने चाहा कि नल के द्वारा बोलूं। १ नम्बर को मैंने फूंका। उत्तर आया, "क्या है?" मैंने कहा, "मैं वस्त्र बदल चुका; क्या तुम्हें अभी देर है?" उत्तर आया, "मैं भी तैयार हूं। आओ।"

नीचे एक बड़े कमरे में हम तीनों भोजन करने बैठे। भोजन के उपरान्त मिस हार्वी चली गईं। हार्वी मुझे अपने कलों के कौशल समझा रहा था, इतने में वहां एक घण्टी बजने लगी।

हार्वी ने कहा, यह निश्चय डब साहब का टेलीग्राफ है। देखो क्या कहता है।

कट् कट् कट् कट् ... ...

वह कहता है, कल संध्या को उसके घर पर भोजन करना होगा। मैं कहता हूं, मेरे एक मित्र आये हैं।

कट् कट् कट् कट् ... ...

सुनो, वह तुमको भी बुलाता है। क्यों जाओगे?

मैंने उत्तर दिया, हानि क्या है?

कट् कट् कट् कट् ... ...

हार्वी—तो यही निश्चय हो गया।

कमरे में एक पियानो बाजा था। हार्वी उसे बजाकर गाने लगा। गीत शेष होने पर उसने कहा यह पियानो आप से बज सकता है सो जानते हो? मैंने कहा, आप से कैसे बजता है? कुंजी घुमाई जाती है?

हार्वी—कुछ नहीं। देखो यह बजने लगा।

सचमुच पियानो बजने लगा। चाभियां आप ही आप उठने और गिरने लगीं, जैसे कोई बजा रहा हो; पर पास कोई भी नहीं था। तब हार्वी ने इसका रहस्य समझाया। हार्वी के घर के पास उसका एक मित्र रहता है। उसके पास भी ठीक वैसा ही एक पियानो है। पतले पतले तारों से एक की चाभियाँ दूसरे से मिली हैं। एक में कोई गति बजाई जाय तो दूसरे में भी वही गति बजने लगती है। अब तक हार्वी ने बजाया था। अब उसका मित्र बजा रहा था।

हार्वी—देखो मैंने कैसे मज़े का एक चोरकल बनाया है। जिस द्वार से घर में घुसना पड़ता है; उसमें पीतल के दो हथकल लगे हैं। उनके साथ दो गैलवैनिक नामक बिजुली की बैटरियों का योग है। जब सोने जाता हूं, एक चाभी दबाकर बैटरी चला देता हूं। यदि कोई चोर घर में घुसने की चेष्टा करे तो वह बड़े जञ्जाल में पड़ जायगा। हथकल को पकड़ते ही उसका सारा शरीर काँपने लगेगा। हाथ की नसें इतनी बेकाम हो जाँयगी कि हाथ उठाने की शक्ति न रहेगी। उसे हथकल पकड़ कर ही खड़ा रहना पड़ेगा। अन्त में मैं आकर बैटरी बन्द कर दूंगा।

मैं—अच्छा! पर जो तुम्हें यह बात न जान पड़े तो चोर बेचारे को रात भर दुःख भोगना पड़े?

हा—मेरी कोठरी में एक घण्टा है; हथकल को पकड़ते ही, वह बजने लगेगा।

रात अधिक होगई। हमलोग सोने गये। हार्वी ने मेरी कोठरी के द्वार तक आकर गुड नाइट कहा। जाती समय वह कह गया, यदि किसी बात की आवश्यकता हो तो नली में कहना।

मैं बिछौने पर जा लेटा। थोड़ीही देर में निद्रा आ गई। मैं स्वप्न में देखने लगा मानो रेलगाड़ी में बैठ कर कहीं जा रहा हूं। यञ्जिन की बांसुरी बज रही है। उसे सुनते ही नींद टूट गई। देखा कि हार्वी नली में सीटी बजा रहा है। मैंने पूछा "क्या ख़बर?" उत्तर मिला—"विशेष कुछ नहीं। किसी बात का कष्ट तो नहीं है? मैं कहता हूं कि सबेरे नौ बजे हम लोग भोजन करेंगे"। मैंने कुछ क्रोध करके कहा, "अब तक कोई कष्ट नहीं था। तुमने मेरी नींद तोड़ दी। अब मुझे मत जगाना"। "मत जगाना" तो कहा; पर नींद आवे तब तो कोई जगाता। नींद तो अब आती ही नहीं। बहुत देर तक बिछौने पर पड़ा पड़ा करवटें बदलता रहा; पर नींद न आई। तब मैंने सोचा, हार्वी ने जैसा मुझे तंग किया, मैं भी उसे छेड़ूं। नली पकड़ कर सीटी बजाई। उनींदे स्वर से उत्तर आया "क्या है?" मैंने कहा "मुझे नींद नहीं आती। या तुम मेरे पास आओ; नहीं तो मैं तुम्हारे पास आऊं। तुम्हीं आओ तो अच्छा हो। जैसा तुमने कहा था, आकर मेरे पास वाले छोटे पलँग पर सोवो।" उत्तर—"मैंने! मैंने तुमसे क्या कहा था? पाजी, बदमाश, कमबख़्त! तू ऐसी बुरी चाल का है! सबेरे उठकर हार्वी से कह कर तुझे इस बात का उचित दण्ड दिलाऊंगी"।

अरे बाप रे! सर्व्वनाश हो गया! भूलकर दो नम्बर की नली से मैंने हार्वी के बदले उसकी बहिन को बुलाया। अब उपाय! सोच कर फिर नली थाम कर मैंने कहा, "मेम साहब, मेरी भूल होगई। भूल से तुम्हारे भाई को बुलाने के बदले मैंने तुम्हें बुलाया"—कोई उत्तर नहीं। मैंने फिर कहा, "मेम साहब! आप सुनती हैं? क्षमा कीजिए।" कुछ उत्तर नहीं। निश्चय मेमसाहब ने मुझ पर बड़ा भारी क्रोध किया है। अब और मेरी बात नहीं सुनेंगी। चेष्टा विफल जान पलँग पर मैं फिर लेट गया। मनही मन जो घृणा हुई उसका कहना ही क्या? कैसी लज्जा की बात हो गई। ५० वर्ष की एक बुढ़िया को अपने पास सोने के लिये मैंने बुलाया इससे मुझे मृत्यु क्यों न आई? छिः!! मैंने तो जाना कि यह बात भ्रम से हुई। मिस हार्वी को तो इस का विश्वास न होगा। सबेरे मैं अपना मुंह कैसे दिखाउंगा। मुझसे रहा न गया। हार्वी को जगा कर सब बात कहने के लिये नली थाम कर मैंने फिर सीटी दी। कहा, देखो, नाम की बड़ी भारी भूल हो गई। दोनो जने एक साथ सोने की इच्छा से तुम्हें न बुला कर मैंने मिस हार्वी को बुला भेजा था। वह क्या समझती होंगी! इसका तो कोई बस नहीं; पर अब तुम तुरन्त मेरे पास आ जाओ; नहीं तो मैं तुम्हारे पास आता हूं"

उत्तर सुन कर मेरी बुद्धि चकराने लगी। मैं सन्न हो गया। यह तो हार्वी के गले का सा स्वर नहीं है! यह एक नरम हलका स्वर था। इस बार मैंने सुन्दरी लिडी को अपने पास बुलाया था। वह कहने लगी "तुम मरते नहीं? मेरे पास क्यों आओगे; जहन्नुम में नहीं जाते?" मैंने झटपट कहा, छिः छिः क्रोध न करो; आगे मेरी बात तो सुनलो—लिडी ने मेरी बात दबा कर कहा—"क्या सुनूं कमबख़्त! ख़बरदार जो तू ने फिर कुछ कहा! लो, मैंने कागज़ से यह नली बन्द कर दी। और सबेरे उठकर मैं तेरे मुँह पर झाड़ू-मारूंगी"।

[शेष आगे।

कुमुदबन्धु मित्र।

यलोरा के गुफा-मन्दिर।

सरस्वती की किसी संख्या में अजण्टा की गुफाओं के चित्रों का वर्णन किया गया है। आज हम यलोरा की गुफाओं का संक्षिप्त वर्णन लिखते हैं। ये गुफायें बहुत बड़ी बड़ी हैं, और अनेक हैं; अतएव उन सब का सविस्तर वर्णन करने के लिए बहुत स्थान और बहुत समय दरकार है। फिर, गुफाओं के साथ उनके चित्र और उनके भीतर की सैकड़ों मूर्तिओं का वर्णन, पूरे तौर से, एक सामयिक पत्रिका में, करना, और भी अधिक कठिन काम है। एक बात और भी है। वह यह कि अजण्टा में केवल बौद्धों की गुफायें हैं; परन्तु, यलोरा में बौद्ध, जैन और हिन्दू, इन तीनों की, हैं। "भारतवर्ष के गुफा-मन्दिर" (Cave Temples of India) नाम की अँगरेज़ी पुस्तक में इन मन्दिरों का वर्णन पढ़ने और उनके चित्रों के दर्शन करने पर, इस देश के प्राचीन कला कौशल-सम्बन्धी भावों का हृदय में जो उन्मेष होता है वह बड़ाही आतङ्क-जनक और साथही बड़ाही आह्लादकारक भी है। इन मन्दिरों के विषय में पुरातत्ववेत्ताओं ने अनेक प्रशंसापूरित लेख लिखे हैं। हम, यहां पर, उन्हीं का सारांश प्रकाशित करते हैं।

जबलपुर से बम्बई को जो रेलवे लाइन जाती है उसका नाम ग्रेट इण्डियन पेनिन्शुला रेलवे है। इस लाइन पर, मन्मार नाम का एक स्टेशन है। यह स्टेशन बम्बई से १६१ मील, इलाहाबाद से ६८० मील और नागपुर के रास्ते होकर कलकत्ते से १०६० मील है। मन्मार से निज़ाम के हैदराबाद को एक दूसरी रेलवे लाइन जाती है। इस लाइन का नाम "हैदराबाद गोदावरी वैली रेलवे" है। इस लाइन पर, मन्मार से ७१ मील दूर, औरङ्गज़ेब की याद दिलानेवाला औरङ्गाबाद स्टेशन है। यलोरा के मन्दिरों को देखने के लिए इसी स्टेशन पर उतरना पड़ता है। यहां से यलोरा नाम का गाँव १४ मील है। इसे एलापुर, यलुरू और वेरुल भी कहते हैं। यह निज़ाम के राज्य में है। किसी किसी का मत है कि यलिचपुर के राजा यदु ने यलोरा को आठवें शतक में बसाया था। यहां से ये गुफा-मन्दिर कोई ½ मील दूर हैं और बराबर सवा मील तक चले गये हैं।

यलोरा की गुफाओं का उल्लेख, सबसे पहले, अरब के भूगोल-वेत्ता महसूदी ने दसवें शतक में किया। परन्तु उसने उनके शिल्प-सौन्दर्य्य के विषय में कुछ न कह कर केवल उनको एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान बतलाया। १३०६ ईसवी में, गुजरात की राज-कन्या कमला-देवी इन्हीं गुफाओं में छिपी थी। अलाउद्दीन ख़िलजी के सेनापति मलिक काफ़ूर ने उसे यहीं से ढूंढकर देहली भेजा था। इन गुफाओं में मुसल्मानों का प्रथम-प्रवेश इसी समय हुआ जान पड़ता है।

एकान्त-सेवन के लिए, निर्जन पर्वतों के बीच, ऐसी ऐसी गुफाओं का निर्म्माण बौद्ध लोगों के समय से आरम्भ हुआ। वर्षा ऋतु में बौद्ध भिक्षु इन्हीं गुफाओं में रहकर परमार्थ-चिन्तन करते थे। बौद्धों की देखा देखी जैनों ने भी रमणीक पार्वतीय स्थानों में गुफा-मन्दिर बनवाये। और कहीं कहीं बौद्ध और जैनों की स्पर्धा सी करने के लिए हिन्दुओं ने भी वहीं अपने मन्दिर खड़े कर दिये। यलोरा एक ऐसा स्थान है, जहां, इस देश के इन तीनों धर्मों के अनुयायियों द्वारा निर्म्माण किये गये, भिन्न भिन्न तीन प्रकार के गुफा-मन्दिर, एक दूसरे के बाद, पासही पास, बने हुए हैं। भारतवर्ष में यलोरा किसी समय प्रख्यात तीर्थ गिना जाता था; और अपने अपने समय में, दूर दूर से आये हुए, लाखों बौद्ध, जैन और हिन्दू यात्री यहां इकट्ठे होते थे। वह समय यद्यपि अब नहीं रहा; परन्तु यलोरा की गुफायें और मन्दिर अभी तक बने हुए हैं; और अपने प्राचीन वैभव की गवाही दे रहे हैं। इन मन्दिरों में जो नाना प्रकार के चित्र और मूर्तियां बनी हैं उनको देखकर उस समय की सामाजिक अवस्था का पता भली भाँति लगता है। उस समय के

जीव जन्तु, उस समय के वस्त्रालङ्कार, उस समय के अस्त्र शस्त्र और उस समय के आमोद प्रमोद की प्रणाली के भी ये चित्र सच्चे सूचक हैं। धर्म्म से सम्बन्ध रखनेवाली बातों के तो ये प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

यलोरा की गुफायें एक ढालू पहाड़ी के बाहरी भाग को काट कर उसके भीतर बनाई गई हैं; और उत्तर दक्षिण कोई मील सवा मील तक चली गई हैं। जहां पर ये बनी हुई हैं वहां की पर्वत-श्रेणी के ढालू होने, और मैदान की ओर वाले भाग के भीतर उनके बनाये जाने, के कारण इन गुफाओं में प्रायः सभी के सामने सहन है। इन गुफाओं के भीतर बने हुए मन्दिरों के कारुकर्म्म को देखकर बड़े बड़े यञ्जिनियर और बड़े बड़े शिल्प-निपुण कारीगरों की बुद्धि चक्कर खाने लगती है। इनके रङ्गीन चित्र, रङ्गीन बेल बूटे, भाव भरी मूर्तियां और भाँति भाँति की जालियाँ देखकर देखनेवालों की चित्त वृत्ति स्थगित और स्तम्भित हो जाती है। मूर्तिद्रोही, अन्य धर्म्मावलम्बी अन्य देशवासी लोगों के भी मुख से इन मन्दिरों की स्तुति सुनकर हृदय में एक अपूर्व भक्तिभाव का उदय हो उठता है। फर्गुसन, बर्ज्यस और बाड्लिर्ट ने तो इनके स्तुति-पाठ से भरी हुई पुस्तकें लिख डाली हैं। एक साहब लिखते हैं कि, "यलोरा के ये प्राचीन मन्दिर, इस समय, दैवात् उजाड़ अवस्था में पड़े रहने पर भी मनुष्य की कल्पना को व्याकुल कर देते हैं। वह यही नहीं स्थिर कर सकती कि किस प्रकार ये मन्दिर मनुष्य से बनाये गये होंगे। इन मन्दिरों के सामने खड़े होकर यदि कोई कुछ लिखना चाहे तो क़लम पकड़ने के लिए हाथ ही नहीं उठता। इन विस्मयोत्पादक और भव्य मन्दिरों को देखने से प्राचीन भारतवासियों के शिल्प-कौशल और धर्म्म-प्रवणता का मूर्तिमान चित्र नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। महामनोहारिणी चित्रकारी और शिल्पकर्म्म के सूक्ष्म से सूक्ष्म अनन्त भेदों ने इन मन्दिरों की भव्यता को बहुत ही अधिक बढ़ा दिया है"। जिस समय हिन्दू धर्म्म की सबसे अधिक उन्नति इस देश में थी उस समय के बने हुए विशाल हिन्दू मन्दिरों ने यलोरा की गुफाओं को और भी विशेष प्रधानता प्रदान की है। इन मन्दिरों में, मूर्तियों और चित्रों के द्वारा, अनेक पौराणिक प्रकरण प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं। यहां, कैलाश नामक जो मन्दिर है, वह अद्वितीय है। पहाड़ काट कर जितने मन्दिर इस देश में बनाये गये हैं कोई इसकी बराबरी नहीं कर सकता। यलोरा में यदि अकेला एक यही मन्दिर होता तो भी यह स्थान उतनी ही प्रसिद्धि प्राप्त करता जितनी प्रसिद्धि कि इसने और अनेक मन्दिरों के होते हुए प्राप्त की है।

यलोरा में दक्षिण से उत्तर तक सब ३४ गुफायें और मन्दिर हैं। बौद्धों के गुफा मन्दिर दक्षिण में हैं। इनकी संख्या १२ है। जैनों के उत्तर में हैं। इनकी संख्या ५ है। और, हिन्दुओं के मन्दिर बीच में हैं। इनकी संख्या सबसे अधिक, अर्थात् १७, है। इन मन्दिरों में से, प्रत्येक समूह के प्रसिद्ध प्रसिद्ध मन्दिर का संक्षिप्त विवरण, यथा क्रम, यहां पर, दिया जाता है।

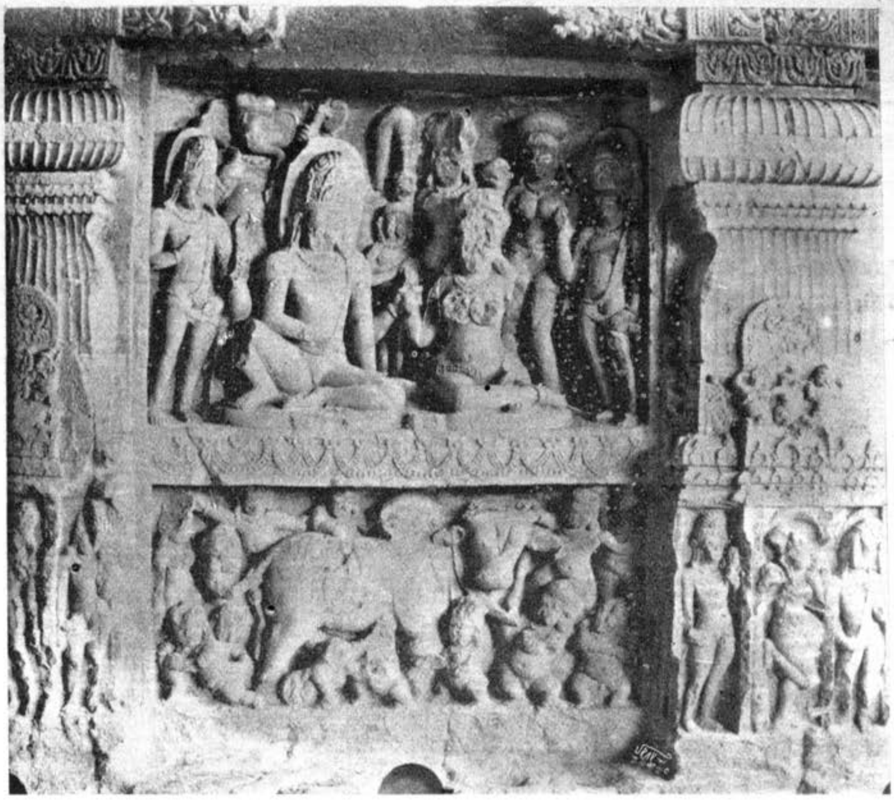
बौद्धों के गुफा-मन्दिरों का नाम, १ से ४ तक का, ढेड़वाड़ा है; और ५ से ९ तक का महारवाड़ा है। दसवें का नाम विश्वकर्म्मा अथवा सुतार का झोपड़ा; ग्यारहवें का दोन थाल और बारहवें का तीन थाल है। १ से लेकर ९ पर्य्यन्त की गुफाओं में, ढेड़ और महार शब्द मराठी भाषा में नीच जाति सूचक हैं। ये नाम पीछे से वहां के रहनेवालों ने रख लिये हैं। ये मन्दिर ६५० ईसवी के पहले के बने हुए हैं। इनमें से कुछ इससे भी पुराने हैं। वे ३५० ईसवी के लग भग बने हुए जान पड़ते हैं। ढेड़वाड़ा नाम का मन्दिर-समूह सबसे अधिक पुराना है; और विश्वकर्म्मा सबसे अधिक विशाल और अवलोकनीय है। दोन थाल का अर्थ दो खण्ड और तीन थाल का अर्थ तीन खण्ड (का मन्दिर) है।

ये गुफा-मन्दिर पर्वत के काटकर उसी की पार्वतीय चट्टानों में भीतरही भीतर गढ़े गये हैं। इनके बनाने में बाहर से ईंट, पत्थर लाकर नहीं लगाया गया। पहाड़ों में से एक छोटी सी पटिया काट कर निकालने में कितना भगीरथ प्रयत्न करना पड़ता है; फिर उसके काटकर उसके भीतर मन्दिर खड़ा कर देना कितने कैाशल, कितने यत्न ग्रैार कितने श्रम का काम है। यह कहने की ग्रावश्यकता नहीं। १ से लेकर ९ नम्बर तक के बैाद्ध मन्दिरों में ग्रनेक मनोहर मनोहर मूर्तियां हैं। कहीं ग्रवलोकितेश्वर बुध की प्रतिमा है, कहीं पद्मपाणि की, कहीं ग्रक्षोभ्य की, ग्रैार कहीं ग्रमिताभ की। तारा, सरस्वती ग्रैार मञ्जुश्री ग्रादि शक्तियों की मूर्तियां भी ठैार ठैार पर बनी हैं; उनकी सेवा विद्याधर कर रहे हैं। इन मूर्तियों की बनावट इतनी ग्रच्छी ग्रैार इतनी निर्दोष है कि किसी किसी के, इस समय भी, उन्हें देखकर उनके सजीव होने की शङ्का होती है। एक हाथ में माला, दूसरे में कमल-पुष्प, कन्धे में मृगचर्म, लिए हुए ग्रभय ग्रैार धर्म्म-चक्र मुद्रा में ध्यानस्थ बुध की मूर्तियों के देखकर मन में ग्रपूर्व श्रद्धा ग्रैार भक्ति का उन्मेष होता है।

बैाद्धों के गुफा-मन्दिरों में विश्वकर्म्मा सबसे ग्रधिक प्रसिद्ध ग्रैार विशाल स्तूप है। यह बैाद्धों का चैत्य है। इसके ग्रागे खुला हुग्रा सहन है ग्रैार चारों ग्रोर बरामदे हैं। मन्दिर का भीतरी भाग ८५ फुट १० इञ्च लम्बा ग्रैार ४३ फुट २ इञ्च चैाड़ा है। इसमें जे खम्भे हैं वे १४ फुट ऊंचे हैं; उनके नीचे बहुतही ग्रच्छा काम किया हुग्रा है। इस मन्दिर में बैाद्ध-साम्प्रदायिक मूर्तियों की बहुत ग्रधिकता है। ग्रनेक धार्म्मिक विषय मूर्तियों द्वारा दिखलाये गये हैं। मूर्तियों के वस्त्र ग्रैार ग्राभूषण ग्रादि के देखकर उस समय की सामाजिक ग्रवस्था का बहुत कुछ ज्ञान होता है। यहां पर बैाद्धों की कुछ ऐसी मूर्तियां हैं जिनके देखकर मन में बडा कुतूहल उत्पन्न होता है। इन मूर्तियों का ऊपरी भाग बहुतही स्थूल है। ये खर्वाकार मनुष्य बुध की सेवा में तत्पर हैं। वज्रपाणि ग्रादि ग्रनेक बोधिसत्वों की भी मूर्तियां इस चैत्य में हैं।

दोनथाल में पहले दोही खण्ड थे। इसलिए उसका नाम दोन थाल पड़ा; परन्तु इसका एक खण्ड नीचे ज़मीन में दब गया था। वह १८७६ ईसवी में खोदकर बाहर निकाला गया। ग्रतएव ग्रब इसे भी तीन थाल कहना चाहिए; क्योंकि तीन थाल के ऐसे इसमें भी तीन खण्ड हैं। दोन थाल ग्रैार तीन थाल मन्दिर, भव्यता में, यद्यपि विश्वकर्म्मा-मन्दिर की बराबरी नहीं कर सकते; परन्तु लम्बाई चैाड़ाई में वे विश्वकर्म्मा से बड़े हैं। इनका कोई कोई दीवानख़ाना ११८ फुट तक लम्बा है। इनमें ग्रनेक छोटे छोटे कमरे हैं। इनके प्रकाण्ड खम्भों के देखकर बुद्धि काम नहीं करती। वे बड़ी ही सुघराई से काटे गये हैं। वे चैाकोर हैं ग्रैार उनपर बड़ी कारीगरी की गई है। उग्रा, रैला, विश्वा, वज्रधातेश्वरी, लक्ष्मी ग्रैार सरस्वती ग्रादि की मूर्तियां ठैार ठैार पर बनी हुई हैं। बुध ग्रैार बोधिसत्व भी प्रायः प्रत्येक कमरे में विराजमान हैं। इनमें से कोई भूमिस्पर्श मुद्रा में हैं, कोई ललितासन मुद्रा में, कोई पद्मासन मुद्रा में ग्रैार कोई ज्ञान मुद्रा में। ग्रनेक विद्याधर ग्रैार ग्रनेक देवी-देवता, इन मन्दिरों में, बने हुए दिखलाई देते हैं। इस समय, पत्थर का एक पुतला बनवाने के लिए हमलोगों के विलायत की शरण जाना पड़ता है। इस बात का विचार करके ग्रैार डेढ़ हज़ार वर्ष के पुराने इन मन्दिरों की महामनोहर मूर्तियों के देखकर प्राचीन कारीगरों के शिल्प-कैाशल की सहस्र मुख से प्रशंसा करने के जी चाहता है। इन मन्दिरों में किसी किसी बुध के सामने, ग्रैार दाहने बायें, स्त्रियों की भी मूर्तियां हैं। ये स्त्रियां प्रायः पद्मासन मुद्रा में बैठी हैं; किसी किसी के हाथ में माला, ग्रैार फूल हैं।

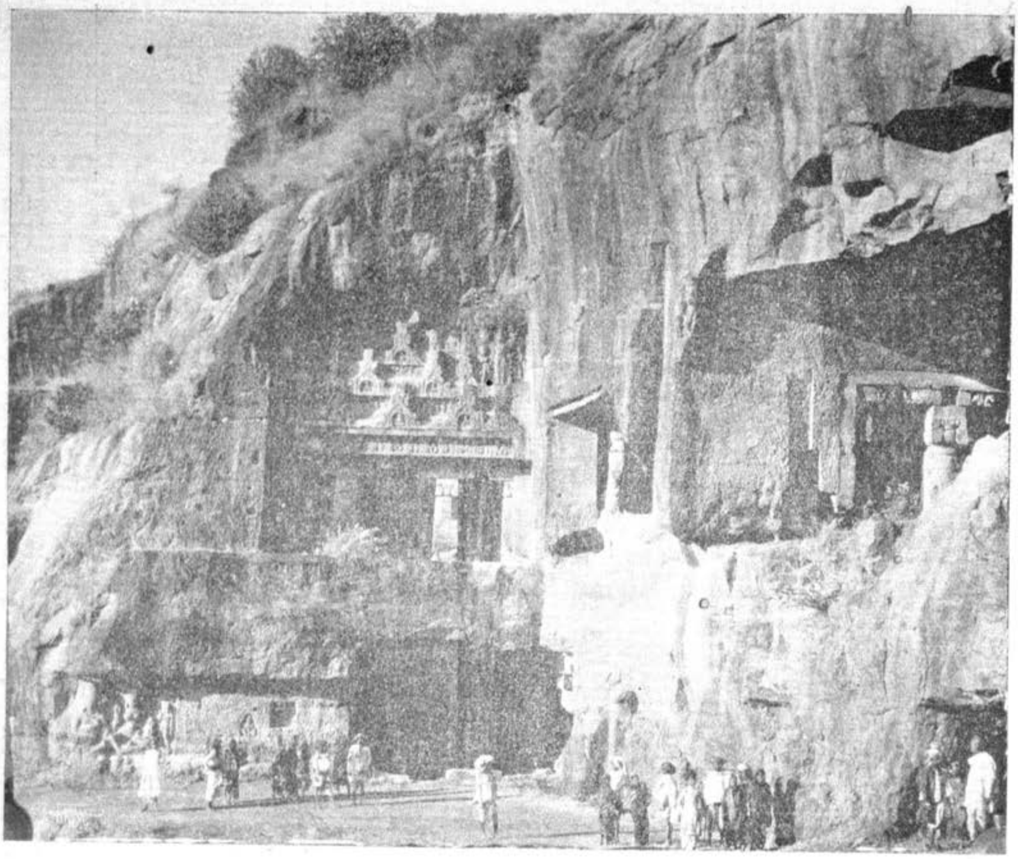
यलोरा में जैन-मन्दिरों का समुदाय उत्तर की ग्रोर है। इसमें कुल ५ मन्दिर हैं। ये पूरे नहीं बनने पाये; ग्रसम्पूर्ण स्थिति में ही छोड़ दिये गये हैं।



रावण की खाई—यलोरा—में मुर्त्तियां।



सीता की चावड़ी—यलोरा। भीतरी दृश्य।



देववाड़ा की गुफ़ा—यलोरा। बाहरी दृश्य।



वीरभद्र की मूर्त्ति—यलोरा।

परन्तु दो मन्दिर बहुत बड़े हैं। एक मन्दिर का नाम छोटा कैलाश है। छोटा इसे इसलिए कहते हैं क्योंकि हिन्दुओं के मन्दिर-समूह में कैलाश नाम का एक बहुत बड़ा मन्दिर है। जैनों के और मन्दिरों के विषय में अधिक न कह कर, इन्द्रसभा और जगन्नाथ-सभा नाम के जो दो प्रसिद्ध मन्दिर हैं उन्हीं के विषय में हम दो चार बातें, यहां पर, कहना चाहते हैं।

हिन्दुओं के कैलाश (जिसका उल्लेख आगे आवैगा) और बौद्धों के विश्वकर्म्मा मन्दिर को छोड़ कर, जैनों के इन्द्रसभा-मन्दिर की समता यलोरा का और कोई मन्दिर नहीं कर सकता। यह मन्दिर बौद्ध और हिन्दुओं के मन्दिर-समूह के पीछे बना है। मध्यभारत में राष्ट्रकूट-वंशीय राजाओं का राज्य नवें शतक में बहुतही निर्बल हो गया था। उस समय यलोरा के आस पास का देश जैनों ने अपने अधिकार में कर लिया था। जान पड़ता है, उन्होंने बौद्ध और हिन्दुओं की देखादेखी अपने प्रभुत्व और शासन की यादगारी में ये मन्दिर बनवाये हैं। इन्द्रसभा में कई बरामदे, कई प्राङ्गण, और कई देवगृह हैं। इसकी छत की चित्रविचित्र बनावट; इसके खम्भों की तराश और उनपर का काम; और इसकी मूर्तियों की सुन्दरता अपूर्व है! कहीं महावीर की मूर्ति है; उसके दोनों ओर दो चामरधारिणी दासियां खड़ी हैं; सिर पर मनोहर छत्र है; पीछे की ओर पत्तों का स्तबक है। कहीं पार्श्वनाथ की प्रतिमा विराजमान है; उसपर स्त्रियां छत्र धारण किये हुये हैं; सर्पराज सिर के ऊपर अपना फण फैलाये हैं; पैरों को नाग-कन्यायें स्पर्श कर रही हैं; चारों ओर दैत्यों का समुदाय तपोभङ्ग करने के प्रयत्न में है। कहीं इन्द्र, ऐरावत पर आसन लगाये हैं; इन्द्राणी सिंह पर सवार हैं; दास दासियां उनकी सेवा में निमग्न हैं। जगह जगह पर जिन-तीर्थङ्कर अपने अपने शासन-देव और देवियों के सहित मन्दिर की शोभा बढ़ा रहे हैं। नेमिनाथ, गोमटेश्वर और महावीर की अनेक मूर्तियां हैं; जितनी हैं सब अवलोकनीय हैं; और प्रायः अच्छी दशा में हैं। शची (इन्द्राणी), अम्बिका और सरस्वती की भी कितनीही चित्त-ग्राहिणी प्रतिमायें हैं। दिगम्बर जैनों के परम श्रद्धाभाजन गोमटेश्वर के पूरे आकार के कई दिग्वस्त्रधारी स्वरूप हैं। इन मूर्तियों के अङ्ग प्रत्यङ्ग सब ऐसे अच्छे हैं कि आज कल के कुशल से भी कुशल कारीगर उनमें कोई दोष नहीं दिखला सकते। मूर्तियों के पास, कहीं कहीं, उनके वाहन सिंह, गज, हरिण और कुत्ते भी हैं। किसी किसी तीर्थङ्कर पर पुष्पवर्षा हो रही है और गन्धर्व अपने गान से उन्हें प्रसन्न कर रहे हैं। इस मन्दिर के जितने दृश्य हैं सब मनोहर हैं; और उनके निर्म्माण करने-वालों की शिल्प कुशलता के स्वरूपवान् प्रमाण हैं।

जैनों का दूसरा प्रसिद्ध मन्दिर जगन्नाथ-सभा नामक है। यह इन्द्रसभा से मिला हुआ है; परन्तु उससे छोटा है। इसकी कुछ मूर्तियां छिन्नभिन्न भी हो गई हैं। इससे इसकी शोभा में क्षीणता आगई है। इसकी बनावट, भीतर और बाहर, इन्द्र सभा से प्रायः मिलती है। इसका शिल्पकार्य और इसकी मूर्तियां भी बहुत करके इन्द्रसभा से मिलती हैं। अतएव इसके विषय में विशेष-रूप से कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

यलोरा में हिन्दू-मन्दिरों की संख्या औरों की अपेक्षा अधिक है। जैसा, पहले, एक जगह, कहा गया है—वे सब १७ हैं। वे बौद्ध और जैन मन्दिरों के बीच में हैं। उनमें से ९ मुख्य हैं, यथा—

१ रावण की खाई	५ लंकेश्वर
२ देवबाड़ा	६ रामेश्वर
३ दशावतार	७ नीलकण्ठ
४ कैलाश अथवा रङ्ग-महल	८ धुमार लेन अथवा सीता की चावड़ी

रावण की खाई में अनेक मूर्तियां हैं। उनमें से कुछ का चित्र यहां पर दिया जाता है।

शेष अगली बार।

कवित्व।

[१]

कवित्व संसार में बड़ा ही सुन्दर है। स्वर्ग की अप्सरायें, नन्दन वन के पारिजात पूर्णिमा का चन्द्र, सुन्दर कहे जाते हैं,-किन्तु कवित्व के सामने इन सब की सुन्दरता अकिञ्चित्कर है। वसन्तऋतु की मलयानिल, प्रातःकाल का दिङ्मण्डल, सन्ध्या का अरुणित आकाश भी सुन्दर कहे जाते हैं; किन्तु क्या वे कवित्व की सुन्दरता की समता कर सकते हैं ?

कवित्व के सुन्दर कहना कवित्व का अनादर करना है। कवित्व ही समस्त सुन्दर वस्तुओं का मूल है। कवित्व ने ही सुन्दर के सुन्दरता दी है। सौन्दर्य्य-संसार में कवित्व ही सबसे ऊंचा है। संसार भर में कवित्व ही का राज्य है। अच्छे के बुरा करना; बुरे के अधिक बुरा करना; अथवा अधिक बुरे के अधिक अच्छा करना—घुमा फिरा कर, उलट पुलट कर, बुरे के बुरा और भले के भला करना एकमात्र कवित्व का ही काम है। भगवान ने उसे सब कुछ करने की शक्ति दी है।

कवित्व अन्धकार में दीपक है; कवित्व दरिद्र के धन है; कवित्व भूख में अन्न और प्यास में शीतल जल है। कहां तक कहें, वह दुःख में धैर्य्य और विरह में मिलन है। आज उसी कवित्व की कथा मैं लिखने बैठा हूं; इसी से मन अलैकिक आनन्द में है।

कवित्व की दया और उसकी प्रीति से सामान्य मनुष्य भी अमर हो जाता है; इसीसे कवित्व की उपासना करने और उसे श्रेष्ठता देने के कौन नहीं उद्यत होगा।

[२]

कवित्व इतना अच्छा मनुष्य है; किन्तु उसका जीवनचरित नहीं है। जीवनचरित लिखने की कोई सामग्री भी नहीं है। दर्शन तथा विज्ञान, कवित्व के 'मनुष्य' कहने में हिचकते हैं। हिचकने दो; किन्तु मैं तो उसको एक असाधारण मनुष्य—एक महापुरुष, एक आदर्श पुरुष समझता हूं। पाठक मैं जो कुछ समझता हूं, ठीक उसी प्रकार, आपके परिचय भी दूंगा। बड़ी कठिनाई से आज मैं कवित्व की थोड़ीसी जीवनी लिखने बैठा हूं। बहुत कुछ खोजखाज करने पर भी अब तक इसका जन्म समय मैं निश्चय नहीं कर सका। बहुत पहले, अथवा यों कहिये कि, लाखों वर्ष पहले उसका जन्म हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

कवित्व की जन्मभूमि कहां है ? मृत्युलोक अथवा देवलोक, सो कुछ ठीक नहीं। ठीक है केवल यह कि, कवित्व एक बड़ा प्रभावशाली, सर्व जन प्रिय चक्रवर्त्ती राजा है। बचपन में उसे उसके शत्रुओं के हाथ से बड़े बड़े दुःख झेलने पड़े हैं। अनेक बार उसका जीवन सङ्कट में पड़ा है। भाषा का अभाव ही उसका प्रधान शत्रु है। आधुनिक पण्डितों ने अनुसन्धान से यही निश्चय किया है कि कवित्व उस समय निःसहाय था। शत्रु के दमन करने में वह उस समय सफलीभूत नहीं हुआ। उस समय कौन जानता था कि एक समय यही कवित्व दिग्विजयी सम्राट हो जायगा। कौन जानता था कि अभागे जगत् का यही कवित्व जीवनसर्वस्व होगा। यही कवित्व, आगे संसार में श्रेष्ठासन पर बैठ, देव तथा मानवों के हृदय का पूजोपहार ग्रहण करेगा; यह बात तब किसीके स्वप्न में भी न आई थी।

निःसहाय होने पर भी कवित्व ने बड़ी वीरता दिखलाई। अपने प्रभाव से उसने प्रबल शत्रुओं के हाथ से अपने के भली भांति बचा लिया; क्योंकि कुछ दिन पीछे एक परम रूपवती सुन्दरी रमणी ने उत्पन्न होकर कवित्व के प्रबल शत्रु के एक बार ही विध्वंस कर दिया। उस स्त्री का नाम 'भाषा' है।

वीरवर कवित्व, यह हाल पाकर, शत्रुसंहारिणी वीराङ्गना भाषा से विवाह करने के लिये बहुतही उत्सुक हुआ। भाषा भी कवित्व के सब गुण सुन-कर उसके गले में वरमाला डाल देने के व्यग्र थी।

किन्तु विधाता का लेख अखण्डनीय है। लाख चेष्टा करने पर भी जिस दिन जो होनेवाला है वह उसी दिन होता है। कोई बाधा नहीं; किसीको कुछ आपत्ति भी नहीं; तब भी कितने ही वर्ष बीत गये; किन्तु कवित्व और भाषा की आशा पूरी न हुई। भाषा और कवित्व का पाणिग्रहण न हुआ। वीरवर कवित्व ने और भी कड़ी प्रतिज्ञा की, कि यदि मैं भाषा को न पाऊं तो अब इस देह को रक्खूंहीगा नहीं।

विरह बड़ा भयानक रोग है। जिस वीर ने अकेले प्रबल शत्रुओं के सङ्ग युद्ध करके जय लाभ किया, वह भी इसे न जीत सका। यह रोग लगे पीछे बिना सच्ची ओषधि के कभी नहीं जाता है। कवित्व का वह शत्रु नहीं है; किन्तु, तिस पर भी, वह उसे नहीं छोड़ सका। कवित्व लताओं में शयन करके भी अपने मन को शान्ति नहीं दे सका। उसके आत्मीय जन उसकी यह अवस्था देख चिन्ता करने लगे—हाय! जान पड़ता है कि अब कवित्व बचेगा नहीं। भगवान! नहीं जानते कि तुम्हारे मन में क्या है।

[३]

तमसा नदी के तीर पुष्पक वन बड़ा शोभायमान लगता है। प्रातःकाल की मृदुमन्द वायु धीरे धीरे बहकर फूलों का चुम्बन कर रही है। वायु से लतादि खेल रही हैं। पशुपक्षी इधर उधर क्रीड़ा कर रहे हैं। विरही के लिए ऐसा स्थान बड़ाही दुःखदायी है। दैवेच्छा देखिये; आज बिचारा कवित्व इसी स्थान पर घूमता घूमता आ पहुँचा। स्थान को देखकर उसका हृदय बड़ा कातर हो गया। हाय! इस स्थान पर छोटे पक्षी से लेकर बड़े बड़े पशु तक अपनी पत्नियों के साथ विहार कर रहे हैं। केवल मैं ही ऐसा अभागा क्यों हूं? ईश्वर! तुम्हें मेरी दशा पर तनिक दया नहीं आती। कौन दिन होगा, जिस दिन मेरा हृदय सुन्दरी भाषा के संयोग से शीतल होगा। विरहातुर कवित्व इस प्रकार शोक सागर में डूबने लगा; किन्तु किसीने उसके प्रति दया न की; किसी ने उसकी ओर झांका तक नहीं।

ब्राह्मण बड़े दया पात्र होते हैं। उनकी दया ने सारा संसार जीता है। ब्राह्मण वा ऋषियों की दया न होने से जगत् एक बार ही अन्धकार में धँस जाता। कवित्व का शोक देखकर दयावान ब्राह्मणों से न रहा गया। उन्होंने उसकी कातरता का वर्णन ऋषिवर वाल्मीकि से किया। शोकातुर कवित्व का वह दुःख किसी ने न समझा। समझा केवल ऋषि वाल्मीकि ने; उन्होंने उसकी सब इच्छा समझ ली। प्रेमिकश्रेष्ठ कवित्व के हृदय में जो नैराश्य की अग्नि जल रही थी, उसको उन्होंने ठीक ठीक समझ लिया। महात्मा का दयावान् हृदय कवित्व की कातरता से पिघल गया। उन्होंने अति शीघ्र भाषा और कवित्व के विवाह का योग जुटा दिया। तदुपरान्त उस महात्मा ने कवित्व-समागम के लिये उत्सुक भाषा को लाकर विरहातुर, मर्म्म-पीड़ित, कवित्व के हाथ में, शुभ-समय में, समर्पण किया। भाषा आनन्द से प्रफुल्लित हो गई। कवित्व अपनी मनोकामना पूरी होने की प्रसन्नता से कृतकृत्य होगया। महात्मा वाल्मीकि उस भाग्यशाली मधुर-मनोहर वेशी दम्पती को लेकर, सबके सामने उपस्थित हुए। सब लोग आश्चर्य्य से उन्हें देखने लगे। महात्मा ने कहा—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

दिग्दिगन्त में कोलाहल हो उठा। स्वयं ब्रह्मा उस स्थान पर आये; और वाल्मीकि जी की, इस काम के लिये, उन्होंने सधन्यवाद प्रशंसा की।

[४]

संसार विचित्र है। एक ओर प्रकाश, दूसरी ओर अन्धकार; एक ओर धूप, दूसरी ओर मेघ; एक ओर आनन्द, दूसरी ओर विषाद;—संसार की गति यही है; इसीलिए, उसी संसार में, एक ओर सर्व-पूजित श्रेष्ठ कवित्व; और दूसरी ओर सर्व-घृणित मिथ्या। कवित्व सुन्दर, मिथ्या कुत्सित। कवित्व की प्रशंसा सब जगह; मिथ्या की निन्दा सब

जगह। कवित्व सर्व्वत्र सम्मानित; मिथ्या सर्व्वत्र असम्मानित; इसीसे मैं कहता हूं–'संसार विचित्र है'

कवित्व ने एक दिन इसी बिचारी दुःखिनी मिथ्या को दूर से देखा। दुःखिनी का दुख देख उसको दया आगई। मिथ्या मारी मारी फिरती है। कितने मनुष्य उसके ऊपर धूल और पत्थर फेंक रहे हैं। कितने अकथ्य भाषा में गाली बक रहे हैं। कितने कुचेष्टायें कर रहे हैं। मिथ्या यदि घूमते घूमते किसी के निकट जाकर आश्रय चाहती है तो वह उससे नाक मुंह सकोड़ दस हाथ दूर भागता है। कोई कोई कार्य्यवश उसको लेता भी है; किन्तु फिर भी उसका अपमान होता है। शरणार्थिनी मिथ्या के ऊपर किसी की भी कृपादृष्टि न हुई। जो लोग मिथ्या का पक्ष करते हैं, मनुष्य समाज में वही निन्दित होते हैं।

यही सब देख सुनकर कवित्व कहने लगा—"अहा! जगत् में इस मिथ्या के समान और कोई हतभागिनी स्त्री न होगी। सबके पैरों से कुचली हुई, अनेक दोषों से दूषित इस रमणी के लिये कोई भूलकर भी दया प्रकाश नहीं करता। भगवान! इस पतिता का क्या किसी प्रकार उद्धार नहीं हो सकता है?"

बहुत चिन्ता कर, अन्त में कवित्व ने मिथ्या का पाणिग्रहण करना ही स्थिर किया। उसके साथ विवाह करने से मिथ्या के दोष सब प्रकार से परिशोधित हो जायंगे, यही विश्वास करके वह मिथ्या के साथ विवाह करने को उद्यत हुआ। इस बार कवित्व को विवाह करने के लिये इतनी उत्कण्ठा नहीं सहनी पड़ी।

मिथ्या के साथ कवित्व का विवाह होगया। इस विवाह के भी आचार्य्य वही महात्मा वाल्मीकि हुए। समाज में अनेक प्रकार के ऐसे विवाह होते हैं; इसीसे इस काम के लिये, किसीको दोष नहीं दिया गया। कवित्व ने यथार्थ में बिचारी मिथ्या का उद्धार किया। कवित्व-सहचारिणी मिथ्या जनसमाज में अच्छे प्रकार समादृत होने लगी। कुत्सिता, घृणिता, मिथ्या कवित्व के संयोग से सुन्दर हुई। कवित्व ने भी अधिक प्यार के साथ उसका नाम बदल कर 'कल्पना' रख दिया। कल्पना-भाषा-समन्वित कवित्वदेव की घर घर पूजा अब भी होती है। कवि ने यथार्थ कहा है–"काचः काञ्चनसंसर्गाद्धत्ते मारकतद्युतिम्"।

कवित्व की दोनों ही पत्नियां कुछ चञ्चल हैं। कभी वे दोनों अपने पति का साथ छोड़ कहीं अलग भ्रमण करने लगती हैं। कभी पति के सहित नाना देश, नाना स्थान, देखने को वे चली जाती हैं।

चन्द्र बिना रात्रि फीकी लगती है। कवित्व बिना, मिथ्या का समादर कैसे होगा? काञ्चन नहीं होने से हीरे की शोभा कैसे बढ़ेगी। मिथ्या यदि अकेली रहे तो वही पूर्व्ववत् घृणिता। वह उज्ज्वल-वेशी राजमहिषी कल्पना, और यह विकृतवेशी मिथ्या, दोनो एकही हैं, सो कोई नहीं जान सकता।

मिथ्या जिस समय कल्पना के रूप में महात्माओं के पास से होकर निकलती है उस समय उसका तेज बहुतही देदीप्यमान हो जाता है। उस समय उसमें कुछ भी क्रूरबुद्धि नहीं रहती; उस समय उसका आदर भाषा से भी अधिक बढ़ जाता है। किन्तु वह भाषा की भी वृद्धि-साधन के लिये सचेष्ट रहता है। स्वामि-सङ्ग छोड़ने से मिथ्या के दुःखभाव का भी कभी कभी परिचय मिलता है। उस समय वह भाषा को नीचा दिखलाती है।

हे कवित्व! हे महापुरुष! यह दुःशीला मिथ्या तुम्हारे ही संसर्ग से रमणीरत्न कल्पना हुई है। इसीसे, हे अलौकिक शक्ति-सम्पन्न देव! तुमको हम-लोग पुनः पुनः प्रणाम करते हैं। तुमने दीन की ओर दया करके उसका कष्ट मोचन किया है। तुमने मनुष्यों का हृदय मिथ्या की ओर से बदल दिया है। अतएव तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। तुम धन्य हो!

भाग्यवान कवित्व की और भी दो एक पत्नियां हैं। उनमें से चित्रविद्या मुख्य है। कवित्व

सब पत्नियों का प्यारा है। काव्य, आलेख्य प्रभृति उसके पुत्र हैं। कवित्व की दूसरी पत्नी कल्पना सन्तान के पालन करने में बड़ी चतुर है। इसीलिए कवित्व की कई सन्तान उसीसे ही प्रतिपालित हैं।

कवित्व किसी न किसी स्त्री को साथ लिये बिना बाहर नहीं निकलता है। वह भाषा की अपेक्षा मिथ्या को अधिक प्यार करता है। इसीसे कवित्व एक दोष से दोषी है।

पाठक ! यही कवित्व की संक्षिप्त जीवनी है।*

चतुर्भुज ग्रौदीच्य।

अवध में अँगरेज़ों का पहला इश्तहार।

लफ्टनण्ट जनरल मेक्ल्यूड इनिस ने "ग़दर में लखनऊ ग्रौर ग्रवध" (Lucknow and Oudh in the Mutiny) नाम की एक किताब लिखी है। उसमें उन्होंने उस इश्तहार की नक़ल छापी है जिसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने, ग्रवध को अँगरेज़ी राज्य में मिलाने के समय, प्रकाशित किया था। यह इश्तहार १८५६ ईसवी के फ़रवरी महीने में प्रकाशित हुग्रा था। उस समय वाजिद-ग्रली शाह लखनऊ के सिंहासन पर ग्रासीन थे। इस इश्तहार का भावार्थ हम, सरस्वती के वाचकों के मनोविनोद के लिए, नीचे देते हैं।

१८०१ ई० की सन्धि से ग्रानरेबल ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बादशाह ग्रवध को हर बाहरी ग्रौर भीतरी दुश्मन से बचाना स्वीकार किया; ग्रौर बादशाह ग्रवध ने अपनी तरफ़ यह स्वीकार किया कि वह "ऐसा इन्तज़ाम ग्रपने ग्रफ़सरों के ज़रिये करें कि जिससे उनकी प्रजा की भलाई ग्रौर उनके जान व माल की हिफ़ाज़त हो"। जो काम कम्पनी ने ग्रपने ऊपर लिए उनको, वह, ५० वर्ष से ग्रधिक हुए, पूरे तौर पर बराबर करती रही है।

इस दर्मियान में यद्यपि ग्रंग्रेज़ी सरकार को ग्रकसर युद्ध करने पड़े; परन्तु कोई बाहरी दुश्मन ग्रवध की ज़मीन पर क़दम नहीं रख सका; किसी भीतरी बलवे से बादशाह को ख़तरा नहीं पहुंचा। अँगरेज़ी सेना बादशाह के बिलकुल निकट बनी रही; ग्रौर जब कभी उनके हुक्म व ग्रख़तियारात का बेक़ायदे मुक़ाबिला किया गया, इस सेना ने बराबर मदद पहुँचाई।

परन्तु उस सन्धि के एक ख़ास ग्रौर सब से ग्रधिक ज़रूरी इक़रार को, जो बादशाह ग्रवध ने किया था, सभी बादशाहों ने पूरा करने पर ध्यान न दिया; ग्रौर जो वादा, ऐसा इन्तज़ाम करने का किया गया था, कि जिससे प्रजा की भलाई हो ग्रौर उनके जान व माल की हिफ़ाज़त हो, वह ग्रवल से ग्राख़िर तक पूरा न किया गया।

इस सन्धि के नियमों को पूरा न किये जाने के कारण सरकार अँगरेज़ी ने बहुत दिन पहले ही न्याय के सिद्धान्तों पर इस सन्धि को नाजायज़ कर दिया होता; ग्रौर ग्रपना रक्षक हाथ ग्रवध के शाहों के ऊपर से उठा लिया होता। परन्तु, ग्रब तक, उनको ऐसा करने में इसलिये संकोच रहा कि, ऐसी ग्रवस्था में, शाही ख़ानदान को ग्रवश्य हानि पहुंचती ग्रौर उसका मुल्क छिन जाता। इस ख़ान-दान के क़सूर ग्रपनी प्रजा की ग्रोर चाहे कितने ही हों; परन्तु यह अँगरेज़ी सरकार की मित्रता में हमेशा पक्का ग्रौर सच्चा रहा है।

अँगरेज़ी सरकार ने कुछ इस कोशिश में कसर नहीं रक्खी कि ग्रवध की प्रजा की, उस बदइन्तज़ामी ग्रौर ज़ुल्म से रक्षा करे, जो बादशाह ग्रवध के कारण उन्हें सहनी पड़ी।

बहुत वर्ष हुए जब गवर्नर जनरल, लार्ड विलियम बेंटिङ्क ने, यह देखकर कि तमाम कोशिशें ग्रवध की प्रजा की भलाई के लिए बेकाम हुईं, बादशाह ग्रवध पर साफ़ ज़ाहिर कर दिया था कि ऐसी ग्रवस्था में अँगरेज़ी सरकार मजबूर होगी कि ग्रवध का इन्तज़ाम वह ख़ास ग्रपने हाथ में

---

* पञ्चानन तर्करत्न के लेख की छाया।

करले। इन्हीं शब्दों में, यही धमकी, फिर, आठ वर्ष हुए लार्ड हार्डिञ्ज ने अवध के बादशाह को दी। इस बार बादशाह अवध से बहुत दृढ़ता से यह कहा गया कि उन्हें याद रखना चाहिये, कि "कुल दुनिया पर यह विदित होगा कि उन्हें अपने तौर पर, यथासमय, चितावनी करदी गई थी"। परन्तु सरकार अँगरेज़ी के ऐसे अच्छे इरादे अवध के बादशाहों और वज़ीरों के हठ, निकम्मेपन या लापरवाही से हमेशा बेकाम हुए। नेक सलाहें और क्रोध प्रकाश करती हुई हिदायतें, ५० वर्ष से भी अधिक समय तक दीगई, परन्तु सब धमकी और सब हिदायतें बिलकुल बेकार और फ़ज़ूल हुईं।

सन्धि की ख़ास शर्त पर अब तक कुछ अमल न हुआ। अवध के बादशाहों के वादे व्यर्थ ठहरे और अवध के निवासी अब तक ज़ुल्म के शिकार बन रहे हैं। न इसका कोई इलाज है; न छुटकारे की कोई आशा। यह बदनामी कुल मुल्क में ज़ाहिर हो गई है कि अपने अनेक पूर्व पुरुषों की तरह यह बादशाह भी रियासत के इन्तज़ाम में वस्तुतः कुछ दख़ल नहीं देते।

राज्य के अख़तियारात, कुल मुल्क में, बादशाह के नालायक़ दोस्तों में बँटे हुए हैं; या वे दुष्ट, रिशवती और निर्दयी आदमियों को दिये गये हैं जो न एतबार के क़ाबिल हैं, न किसी और काम के क़ाबिल हैं।

मालगुज़ारी जमा करनेवालों के अख़तियारात पर कोई देख भाल नहीं; और वे लोग प्रजा से ज़बरदस्ती जितना हो सकता है वसूल करलेते हैं। पिछली या हाल की शर्तों पर वे ज़रा भी ध्यान नहीं देते।

बादशाह की फ़ौज, जो बिलकुल अशिक्षित है, और जिसके अफ़सर फ़ौज के नाम से तनख्वाह लेकर उड़ा देते ही नहीं, अपनी गुज़र के लिये गांव के गांव लूट लेते हैं। यहां तक कि, जिस मुल्क के बचाने के लिए वह रक्खी गई है उसीकी वह काल है।

लुटेरों के झुण्ड के झुण्ड हर ज़िले में उपद्र कर रहे हैं। क़ानून और इनसाफ़ कोई जानता ह नहीं। हथियार चलना और सिर कटना प्रतिदि का एक मामूली बात है। जान व माल कहीं ए घण्टे के लिए भी महफ़ूज़ नहीं।

अब सरकार अँगरेज़ी इन आपत्तियों को अव में जारी नहीं रहने दे सकती, क्योंकि ये आपत्तिय एक प्रकार से, उसके द्वारा सन्धि के नियमों पालन किये जाने के कारण ही उठ रही हैं। अ वह शाहान अवध की रक्षा नहीं कर सकती। इस रक्षा ही की वजह से बादशाह को ऐसा ज़ुल्म कर का अधिकार हासिल है।

५० वर्ष के तजुरबे ने साबित कर दिया कि १८०१ के अहदनामे से अवध की प्रजा को कुछ भ आराम और हिफ़ाज़त नहीं हासिल हुई। इस तजुरबे ने पूरे तौर पर ज़ाहिर कर दिया कि, किस प्रकार यह भरोसा नहीं हो सकता, कि प्रजा के उस ज़ुल्म से, जो वह बहुत दिनों से सहन कर रह है, तब तक छुटकारा न हो सकेगा, जब तक कि सरकार ख़ुद कुल इन्तज़ाम, हमेशा के लिए, अप हाथ में न ले।

इस कारण, आनरेबल कोर्ट आफ़ डाइरेक्ट के ख़ास हुक्म और रज़ामन्दी से सन् १८०१ ई० क सन्धि, जिस पर कि किसी बादशाह अवध ने पू तौर से अमल नहीं किया, अब बिलकुल नाजाय क़रार दी जाती है।

हुज़ूर वाला वाजिद अली शाह से एक दूस सन्धि करने के लिए कहा गया। इस सन्धि मुताबिक़ अवध का राज्य सर्वदा के लिए आनरेब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सिपुर्द हो जाता; औ बादशाह और उनके ख़ानदान को शान व शौक और उनके इज़्ज़त से गुज़रान का पूरा सामान क दिया जाता। परन्तु हुज़ूरवाला बादशाह ने इ सन्धि पर दस्तख़त करने से इनकार किया।

अब, चूंकि, वाजिद अली शाह और उन पूर्वजों ने १८०१ ई० का सन्धि को (जिसमें उन्हो

यह अहद किया था, कि वे अपने देश में ऐसा इन्तज़ाम करेंगे, जो प्रजा को लाभदायक और सुखकारी हो, पूरा करने से इनकार किया या टामटोल किया, या बिलकुल उसपर ध्यान न दिया; और चूँकि जिस सन्धि को उन्होंने इस प्रकार तोड़ा वह अब नाजायज़ क़रार दीगई; और चूंकि बादशाह ने उस सन्धि के बदले दूसरी सन्धि करने से इनकार किया; और चूंकि इस अहदनामे की शर्तों के मुताबिक़, अगर वह अब तक क़ायम रहता, सरकार अँगरेज़ी अपने सिपाहियों की मदद, जिसके बिना अवध में शाही हुकूमत नहीं रह सकती, नहीं देसकती; इससे सब लोगों को ज़ाहिर है कि सरकार केवल एक बात कर सकती थी। या तो वह अवध की रिआया को बिलकुल रक्षाहीन छोड़ दे और उसे ज़ुल्म और सख्त तकलीफ़ों का शिकार बनावै, जैसा कि उसे (अंग्रेज़ी सरकार को) अब तक सन्धि की शर्तों के कारण करना पड़ा; या अपने प्रचण्ड बाहुबल से वह अवध की प्रजा को वह सहायता पहुंचावे जिसके लिए उसने ५० वर्ष पहले वादा किया था। अर्थात् वह मुल्क को अपने हाथ में सदा सर्वदा के लिए लेले। अँगरेज़ी सर्कार ने, बिना पसोपेश के पिछली बात को स्वीकार किया है।

इसलिए यह इश्तहार दिया जाता है कि आज से हुकूमत अवध हमेशा के लिए आनरेबल ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आधीन हुई। सब आमिलों, नाज़िरों, चकलेदारों और दर्बार के नौकरों को, सब फ़ौजी या मुल्की अफ़सरों को, और सब प्रजा को चाहिये कि आज से वे अँगरेज़ी सरकार के अफ़सरों के सब प्रकार हुक्म मानें।

अगर कोई दरबार का अफ़सर, जागीरदार, ज़मींदार या और कोई हुक्म न मानेगा, या मालगुज़ारी देने से इनकार करेगा, या और किसी तरह हुक्म अँगरेज़ी सरकार का टालेगा या आमादा फ़साद होगा तो वह बाग़ी समझा जायगा और गिरफ़्तार किया जायगा; और उसकी जायदाद भी ज़ब्त की जायगी।

उन लोगों से, जो बिना किसी चूं व चरा के, अँगरेज़ी प्रबन्ध को स्वीकार करेंगे, चाहे आमिल हों, चाहे दरबार के नौकर हों, चाहे जागीरदार हों चाहे ज़मींदार हों, अथवा चाहे साधारण प्रजाजन हों, हिफ़ाज़त, इनसाफ़ और मेहरबानी का पूरा वादा किया जाता है।

मुल्क की मालगुज़ारी इनसाफ़ के साथ क़ायदे के मुताबिक़ मुक़र्रर की जायगी।

मुल्क अवध की तरक्क़ी के लिए हरतरह कोशिश की जायगी।

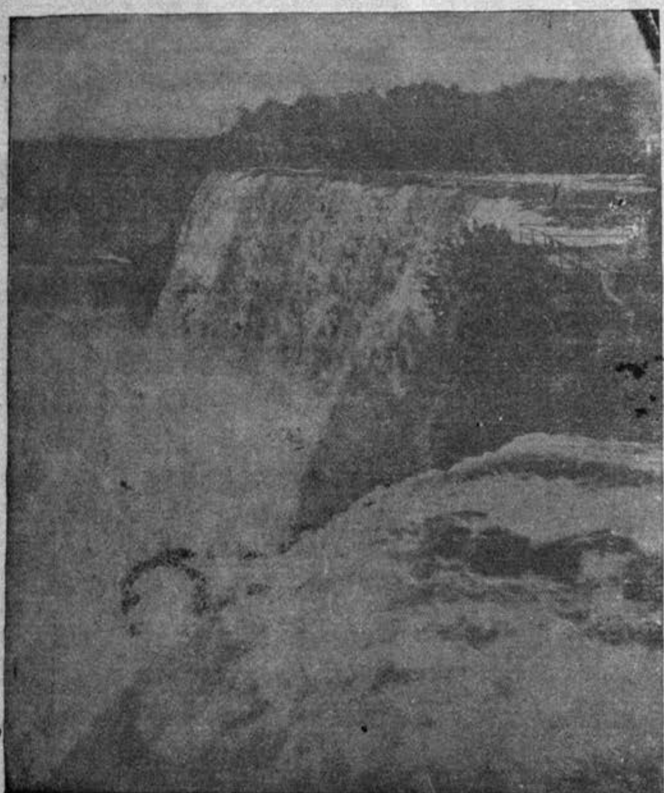
इनसाफ़ सब प्रजा पर बराबर किया जायगा। ज़ान व माल की हिफ़ाज़त की जायगी और हर शख्स आज से अपने हक़ूक़, बिला किसी रोक या डर के, इस्तेमाल में ला सकैगा।

गिरिजादत्त वाजपेयी।

नियागरा जल-निपात।

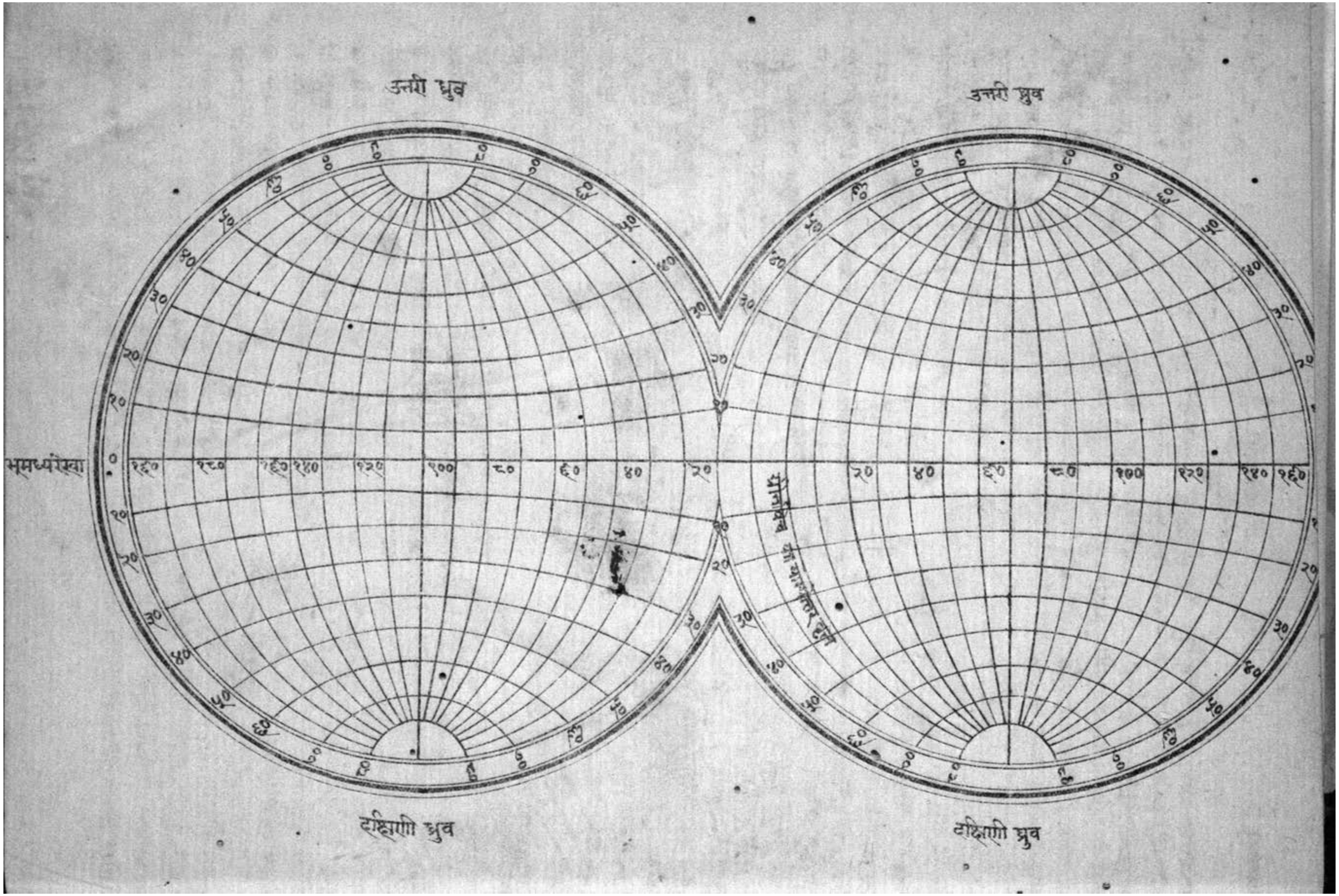
सृष्टिकर्त्ता की रचना में कोई वस्तु ऐसी नहीं जो आश्चर्ययुक्त न हो। चींटी से लेकर हाथी तक, मिट्टी के एक अत्यन्त छोटे टुकड़े से पर्वतराज तक, जलविन्दु से महासागर तक, और घास की पत्ती से बड़े बड़े पीपल और बड़ के वृक्ष तक—कोई जीव या कोई पदार्थ जल में, थल में और आकाश में ऐसा नहीं, जो मानवी बुद्धि को चक्कर में न डालता हो। परन्तु, हम हर रोज़ उस जीव अथवा उस पदार्थ को देख कर, सुन कर, वा काम में लाकर प्रायः आश्चर्य-चकित नहीं होते; और है भी ठीक। किस किसको हम आश्चर्ययुक्त मानें; चौबीसों घण्टे हम एक आश्चर्यमय स्थान में रहते हैं। इस कारण हमारा स्वभावही कुछ ऐसा हो गया है कि लघुता और महत्व के अन्तर या विचार हम सर्वदा नहीं करते। जब कभी हम एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं तब वहां पर हमें अनेक बातें देख पड़ती हैं जिन्हें देख कर हमको पद पद पर आश्चर्य होता है। और जो कोई

वस्तु—प्राकृतिक अथवा कृत्रिम ऐसी देख पड़ी जो हमारे देश में नहीं है, और वह है भी ऐसी जिसे देख कर ईश्वर की महिमा का स्मरण होता हो, तो अवश्य ही हम उसको आश्चर्य क्या महान् आश्चर्य-मय मानते हैं। इसी विचार के अनुसार पृथ्वी में प्राकृतिक और कृत्रिम, बड़े बड़े आश्चर्यमय पदार्थ, माने गये हैं। इनमें से प्राकृतिक आश्चर्य, नियागरा के जलनिपात का संक्षिप्त वर्णन हम सुनाया चाहते हैं।



उत्तरीय अमेरिका महाद्वीप के मध्य में, यूनाइटेड् स्टेट्स् और कनाडा की सीमा पर, पांच मीठे पानी की झीलें हैं—सुपोरियर, मिशिगन, ह्यूरन, ईयरी और ओन्टेरियो। ये पांचों झीलें एक दूसरी से मिली हुई हैं। अन्त में ओन्टेरियो से सेन्ट्लारन्स नाम की नदी प्रवाहित होकर स्वनामधारिणी खाड़ी में जा गिरती है। जो नदी झील ईयरी को झील ओन्टेरियो से मिलाती है, उसे अपने पार्व्वतीय मार्ग में १६० फुट गहरा एक खड्ड मिला है। उसी खड्ड में वह नदी बड़े हाहाकार-कारी शब्द के साथ नीचे गिरती है। इसी ने उस नदी का नाम नियागरा—जल का गर्जन—हो गया है। और "नियागरा का जल-निपात" यह नाम योरुप-वासियों ने नियागरा नदी के नाम पर रक्खा है।

गोट नामक एक छोटा सा द्वीप इस जल-निपात के दो भाग करता है। एक का नाम कैनेडियन और दूसरे का अमेरिकन है। कैनेडियन जलनिपात घोड़े के नाल के आकार का है और अमेरिकन जलनिपात से, जो सीधा है, पांच गुना अधिक चौड़ा है और बीस गुना अधिक जल का भार फेंकता है। परन्तु उँचाई में दोनों समान हैं। अमेरिकन जल-निपात के समोप, और कुछ दूर उसके ऊपर भी, लटकते हुये पुल बनाये गये हैं, जिन पर चढ़ कर देखने से एक विशेष आनन्द आता है। रात्रि के समय इसी छोटे जल-निपात पर जहां तहां बिजली की रङ्ग बिरङ्गी हांड़ियां लटकती हैं। उनकी रोशनी दौड़ते हुए जल पर एक अद्भुत प्रकार से क्रीड़ा करती हुई चित्त को बहुत ही प्रसन्न करती है। पास ही, स्थान स्थान पर, फव्वारों से शोभित छोटी छोटी अति सुन्दर पुष्प वाटिकायें लगी हैं। उनमें बैठ कर, मनुष्य, एक ओर तो मानवी कारीगरी के नमूने, फवारे, देख कर; और दूसरी ओर ईश्वर की महिमा, नियागरा के जल-निपात की वन्दना कर, एक क्षणमात्र में,



उत्तरी ध्रुव
उत्तरी ध्रुव
भूमध्यरेखा
ग्रीनविच या याम्योत्तर वृत्त
दक्षिणी ध्रुव
दक्षिणी ध्रुव

इस असार संसार और उस निर्गुण निर्विकार के भेद को समझ जाता है और उस अपार लीला-मय जगदीश्वर को याद कर वह पुलकित हो उठता है। कुछ समय के लिये वह उस परमानन्द को अनुभव करता है जो परमवैष्णवों तथा योगेश्वरों ही के हिस्से में है।

कैनेडियन जलनिपात, अमेरिकन जलनिपात के समान, बिजली के विशाल लैम्प आदि बाहरी टीप टाप से सज्जित न होने पर भी बहुत ही मनोहर दृश्यवाला है। इसी कारण से यात्री लोग यदि साल भर में बीस बार भी इसे देखें तो भी उनके नेत्र तृप्त नहीं होते और वे, हर बार, प्रथम बार का सा आनन्द प्राप्त करते हैं।

गङ्गा की नहर पर, तथा और और नहरों पर भी, पुल के पास की ज़मीन, कई फ़ुट तक नीची कर दी जाती है। अतएव उस पर से जल बहते समय, जो शब्द होता है वह मील आध मील दूर तक सुनाई देता है। वही जल जब १६० फ़ुट की ऊँचाई से गिरेगा तब वह कितना घोर नाद करेगा यह अनुमान ही से जाना जा सकता है। नियागरा के निपात का मेघगम्भीर-गर्जन बड़ाही आतङ्क-जनक और अद्भुत है।

अमेरिकन निपात की चौड़ाई केवल २२० गज़ है। परन्तु कैनेडियन की चौड़ाई ६०० गज़ है। इन दोनों धारा-प्रपातों से प्रति मिनट १,८०,९६,७५० मन पानी नीचे गिरता है! इस प्रलयङ्कर-प्रपात का निर्ह्राद वज्रपात से भी अधिक गम्भीर, अत्यन्त क्षुब्ध हुए महासागर की तरङ्गमालाओं से भी अधिक निनादकारी, और प्रलयपयोदों से भी अधिक हृदयविदारी होता है !!!

दक्षिण-पूर्वीय आफ़रीका में एक महानदी है। उसका नाम ज़ेम्बसी है। यह महानदी, एक स्थान में, चार सौ फ़ुट से भी अधिक गहरी जगह से हो कर बहती है। वहां वह सिर के बल गिरती है। वह भी जलनिपात है। इस जलनिपात का नाम मृत महारानी भारतेश्वरी के नाम पर विक्टोरिया जलनिपात है। पाठकवृन्द! कहां १६० फ़ीट और कहां ४००! विक्टोरिया जलनिपात नियागरा जलनिपात से उँचाई में गुरुतर है। सौ सवा सौ फ़ुट ऊंची इमारत देख कर मनुष्य का सिर चक्कर खाने लगता है; फिर जब, ४०० फ़ुट ऊंचे से जल की एक चौड़ी धारा गिरती होगी तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो इन्द्रलोक से महारानी मन्दाकिनी लोकोद्धार के लिये अपनी भगिनी भागीरथी की सहायता को स्वयं नीचे उतर रही हैं। सो विक्टोरिया जलनिपात का दृश्य भी बहुत ही अलौकिक है। परन्तु इसकी प्रपात-धारा का विस्तार नियागरा की जल-धारा से छोटा है। इसी लिए इसका माहात्म्य कुछ कम है।

बालकृष्ण दास।

अक्षांश और रेखांश।

सरस्वती का प्रचार मदरसों में भी है। मदरसे के लड़कों को बहुधा नक़शा खींचने का काम पड़ता है; और नक़शा खींचने में लम्बी और आड़ी लकीरें उनको खींचनी पड़ती हैं। इन लकीरों का ठीक ठीक मतलब शायदही सब लड़कों की समझ में आता होगा। इस लिए आज इन रेखाओं–लकीरों–का निरूपण करना है।

भूगोल का नक़शा पृथ्वी का चित्र है; परन्तु आकार के सिवाय, भूगोल और नक़शे में, कोई साम्य नहीं। पृथ्वी गोल है; पृथ्वी के गोले का नक़शा भी गोल है। बस; दोनों में इतनी ही समता है। अधिक नहीं। पृथ्वी के ऊपर के पर्वत, समुद्र, नदियां और झीलें आदि सब कल्पित चिन्हों के द्वारा नक़शे में दिखलाये जाते हैं; उनके आकार और उनके चित्र में महदन्तर है। प्रत्येक खण्ड, देश और प्रान्त आदि के दिखलाने में जो भिन्न भिन्न प्रकार के रङ्ग काम में लाये जाते हैं वे भी काल्पनिक ही हैं। उन रङ्गों से, भूगोल के किसी खण्ड

देश अथवा प्रान्त से यथार्थ में कोई सम्बन्ध नहीं। एक देश या खण्ड को दूसरे से अलग रखने और प्रत्येक की सीमा पृथक् पृथक् दिखलाने ही के लिए रङ्ग काम में लाये जाते हैं। सच तो यह है कि नक़शा देख कर छोटे छोटे लड़कों को पृथ्वी के आकार का बहुतही कम ज्ञान हो सकता है। इसके लिए भूगोल का गोला (Globe) चाहिए। उसको देखने पर नक़शे की काल्पनिक रचना और पृथ्वी के आकार का सच्चा ज्ञान तत्काल हो जाता है। ये गोले अब बहुत सस्ते बिकने लगे हैं; इस लिए शिक्षा-विभाग के अधिकारियों को मदरसों में इनका अधिक प्रचार कराना चाहिए।

नक़शे में जिस प्रकार और काल्पनिक चिन्ह मान लिये गये हैं उसी प्रकार उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम खींची हुई रेखायें भी मान ली गई हैं। इन रेखाओं का प्रचार बहुत प्राचीन समय से है। ये पृथ्वी के ऊपर स्थलों की दूरी और उनका स्थान बतलाने के काम आती हैं। यदि एक कागज़ के एक लम्बे तख़्ते पर कहीं एक बिन्दु हो, और यदि कोई पूंछे, कि वह किस जगह है, तो तख़्ते को नाप कर बतला सकते हैं कि वह दक्षिण से ४ अंगुल ऊपर है; अथवा पश्चिम से ८ अंगुल पूर्व है। परन्तु यह नाप कोई ठीक नाप नहीं। इसमें अन्तर पड़ सकता है। यदि कागज़ के एक तख़्ते को नापने में न भी अन्तर पड़े तो जिस पृथ्वी की परिधि २५००० मील है उसके नगरों की नाप करने में अवश्य अन्तर पड़ जायगा। अब, यदि कागज़ के इस तख़्ते पर, थोड़े थोड़े अन्तर पर, उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम रेखायें खींच दें, तो उस बिन्दु के स्थान को हम बहुतही अच्छी तरह से बतला सकेंगे। इस दशा में हम ठीक ठीक कह सकेंगे कि वह बिन्दु उत्तर-दक्षिण जानेवाली अमुक अमुक रेखा और पूर्व-पश्चिम जानेवाली अमुक अमुक रेखा के बीच में है। ऐसा करने से उस बिन्दु का स्थान बतलाने में ज़रा भी भ्रम न होगा। ऐसी रेखायें उसी क्रम से रक्खी जाती हैं जिस क्रम से कपड़ा बिना जाता है। कपड़े में भी आड़े और लम्बे धा[गे] रहते हैं। इस लिए कपड़े पर भी यदि कोई चिन्ह कर दिया जाय तो उस चिन्ह का स्थान, कपड़े को नाप कर बतलाने की अपेक्षा, उसके धागों को गिनकर बतलाने से अधिक सही होगा। ऐसा करने से यह ठीक बतला दिया जायगा कि व[ह] बिन्दु किन धागों पर है।

कपड़े या कागज़ के ऊपर किसी बिन्दु का स्थान जानने के लिए रेखाओं से जो काम निकलता है, वही काम, नक़शे पर, देश, प्रान्त और नग[र] आदि का स्थान-निर्णय करने के लिए भी उनसे निकलता है।

पृथ्वी गोल है। गोले को वृत्त कहते हैं। गणित-शास्त्र में प्रत्येक वृत्त के ३६० भाग माने जाते हैं। इन भागों को अंश (डिगरी) कहते हैं। वृत्त चाहे जितना बड़ा या छोटा हो, अंश सब में उतनेही होते हैं। इसी नियम के अनुसार पृथ्वी-रूपी वृत्त के ३६० अंश कल्पना कर लिये गये हैं। इनमें से आधे अर्थात् १८० अंश पूर्वी गोलार्द्ध में, और १८० पश्चिमी गोलार्द्ध में हैं। भूमध्य अर्थात् विषुवत रेखा पृथ्वी के बीच में है। वह पृथ्वी के गोले को बीच से काटती है; अर्थात् उसके दो भाग करती है। प्रत्येक गोलार्द्ध का आधा इस रेखा के उत्तर और आधा दक्षिण रहता है। इस हिसाब से पृथ्वी-वृत्त के नब्बे नब्बे अंश के चार भाग हो जाते हैं— दो भाग पूर्वी गोलार्द्ध में और दो पश्चिमी गोलार्द्ध में। ये अंश, रेखाओं के द्वारा दिखलाये जाते हैं; और ये रेखायें विषुवत् रेखा के ऊपर और नीचे नक़शे में, पूर्व-पश्चिम-गामिनी खींची जाती हैं। इन्हीं रेखाओं का नाम अक्षांश (Latitude) है। इस प्रकार की जितनी रेखायें हैं, सब वृत्त हैं। इस लेख के साथ पृथ्वी के दोनों गोलार्द्धों का जो चित्र दिया जाता है उसको देखने से, यह बात स्पष्ट जान पड़ेगी। उसमें ये रेखायें यथा-स्थान दिखलाई गई हैं। ये रेखायें एक दूसरी से कभी नहीं मिलतीं। भूमध्यरेखा से आरम्भ होकर उत्तरी

और दक्षिणी ध्रुवों तक ये बराबर चली जाती हैं। चित्र में जो रेखायें हैं उनमें प्रत्येक के बीच दस दस अंश का अन्तर रक्खा गया है। परन्तु यदि नक़शा बड़ा हो तो प्रत्येक अंश के लिए एक एक रेखा खींची जा सकती है। इन अक्षांशों में प्रत्येक अंश के ६० भाग माने जाते हैं। उनको कला कहते हैं। प्रत्येक कला के भी ६० भाग होते हैं। उनको विकला कहते हैं। अंगरेज़ी में कला और विकला को मिनिट और सेकण्ड कहते हैं। अंशों के साथ कोई कोई कला और विकला न लिखकर मिनिट और सेकण्डही लिखते हैं। परन्तु मिनिट और सेकण्ड का लिखना डिगरियों के साथही अच्छा लगता है; अंशों के साथ नहीं। अंशों के योग में कला और विकला ही का लिखना उचित है। अंश के लिए ° कला के लिए ' और विकला के लिये " चिन्ह है। झांसी २४ अक्षांश, ९ कला, ३० विकला और २५ अक्षांश, ४८ कला, ४५ विकला के बीच में है। इस लिए इन अङ्कों को इस प्रकार लिखेंगे—२४° ९' ३०" और २५° ४८' ४५"। यह अक्षांश-निरूपण हुआ। ये रेखायें पृथ्वी की अक्ष—धुरी—की ओर चली जाती हैं; इस लिए इनकी अक्षांश संज्ञा बहुत ठीक है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उससे यह समझ में आजायगा कि, हज़ारों मील विस्तृत पृथ्वी के गोले के देश और नगर आदि का ठीक स्थान बतलाने के लिए ये अक्षांश कितने उपयोगी हैं। नाप कर प्रत्येक स्थान का पता बतलाने की अपेक्षा अंशों द्वारा उसका पता बतलाना बहुत सहल बात है; और साथही बहुत सही भी है।

अक्षांशों की सूचक रेखायें आड़ी मानी जाती हैं। उनसे यह तो अवश्य मालूम हो जाता है, कि कौन स्थान किन अक्षांशों के पास अथवा बीच में है। परन्तु ठीक पता बतलाने के लिए खड़ी रेखाओं की भी ज़रूरत है। खड़ी रेखाओं के बिना यह बात ठीक तौर पर नहीं जानी जा सकती। कल्पना कीजिए कि अमेरिका का मेक्सिको प्रान्त १०° और २०° अक्षांशों के बीच में है। अब यदि यह कहा जाय कि १०° और २०° अक्षांशों के बीच वाले देश का नाम बतलाओ, तो यह प्रश्नही ठीक न होगा। क्योंकि अनेक देश, अनेक प्रान्त और अनेक नगर इन अक्षांशों के बीच में हैं। हिन्दोस्तान का भी बहुत सा भाग इन्हीं अक्षांशों के बीच में है। इसी दोष को दूर करने के लिए उत्तर-दक्षिण भी रेखाओं की कल्पना करनी पड़ती है। इनके भी ३६० अंश माने जाते हैं; और बराबर बराबर अन्तर पर दस दस अंशों की सूचक एक एक रेखा खींचनी पड़ती है। दोनों गोलार्द्धों में सब मिलाकर ३६ रेखायें होती हैं। नक़शा बड़ा होने से प्रत्येक अंश के लिए एक एक रेखा खींची जा सकती है। ये रेखायें उत्तर-दक्षिण-गामिनी होती हैं; और इनमें यह विशेषता होती है कि ये उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों में मिल जाती हैं। पृथ्वी का आकार गोल होने के कारण ये रेखायें भी वृत्त के रूप में गोल होती हैं। इनसे जिन अंशों का ज्ञान होता है उनका नाम रेखांश (Longitude) है। इनमें भी प्रत्येक अंश ६० कलाओं में और प्रत्येक कला ६० विकलाओं में बँटी हुई मानी जाती है। इनके लिए भी वही चिन्ह रक्खे गये हैं जो अक्षांशों के लिए हैं।

अक्षांशों के साथ रेखांशों का प्रयोग करने से पृथ्वी के जिस भाग का चाहै उसका ठीक ठीक स्थान बतलाया जा सकता है। ऊपर कह आये हैं कि झांसी २४° और २५° अक्षांशों के बीच में है; परन्तु और और देशों में भी ऐसे अनेक नगर हैं जो इन्हीं अक्षांशों के मध्य में हैं। अतएव यह स्थान-निर्णय ठीक निर्णय नहीं। इसके साथ यदि हम रेखांशों का भी पता बतला दें तो पृथ्वी पर झांसी का स्थान निश्चित हो जाय। बड़े नक़शे में देखने से विदित होता है कि झांसी ७८° १२' २०" और ७९° २७' ३०" रेखांशों के बीच में है। अतएव जब हम यह कहेंगे कि झांसी अक्षांश २४° ९' ३०" और २५° ४८' ४५", और रेखांश ७८°

१२' २०" ग्रैर ७९° २७' ३०" के बीच में है, तो कोई संशय न रह जायगा। उसके स्थान का ठीक पता मिल जायगा। यदि नक़शे में झांसी लिखा भी न हो तो भी इस पते से पृथ्वी पर उसका स्थान ठीक ठीक बतलाया जा सकता है। इस प्रकार पृथ्वी के किसी खण्ड, किसी देश ग्रैर किसी नगर का पता नक़शे पर निर्भ्रान्त स्थिर किया जा सकता है। रेखांश ग्रैर ग्रक्षांश दोनों बतलाने से फिर भूल नहीं हो सकती; क्योंकि ग्राड़ी ग्रैर खड़ी दोनों रेखाग्रों के बीच का पता देने से ग्रैर किसी स्थान का वहां पर ग्राजाना ग्रसम्भव होगा।

रेखांशों के विषय में एक बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि उनको किसी स्थान-विशेष से ग्रारम्भ करना पड़ता है। ग्रक्षांशों के लिए यह बात ग्रावश्यक नहीं है; क्योंकि ग्रक्षांश रेखायें विषुवत्-वृत्त से मानी जाती हैं। प्राचीन समय में इस देश के ज्योतिषियों ने लङ्का से लेकर, उज्जेन होते हुए, मेरु पर्वत तक प्रथम रेखा मानी थी। ऐसी रेखाग्रों से उत्पन्न हुए वृत्त का नाम याम्योत्तर वृत्त है। परन्तु ग्राज कल ग्रीनिच से रेखांशों का ग्रारम्भ माना जाता है। ग्रीनिच, इंगलैण्ड में, लण्डन के पास एक नगर है। वहां एक बड़ी भारी वेधशाला है। वहीं से ग्रक्षांशों का ग्रारम्भ माना जाता है; ग्रैर उस नगर के दस दस ग्रंश पर पूर्व पश्चिम रेखाग्रों की कल्पना होती है। जो स्थान ग्रीनिच के पूर्व हैं उनका रेखांश बतलाने में "ग्रीनिच के पूर्व" लिखा जाता है। ग्रैर जो उसके पश्चिम हैं उनके लिए "ग्रीनिच के पश्चिम" लिखना पड़ता है। झांसी ग्रीनिच के पूर्व है। इस लिए उसका ठीक पता बतलाने में जो ग्रंश ऊपर दिये गये हैं उनमें रेखांशों के ग्रागे "ग्रीनिच के पूर्व" ज़रूर लिखना चाहिए।

ग्रक्षांश ग्रैर रेखांश का ज्योतिष ग्रैर भूगोल विद्या में बात बात पर काम पड़ता है। इसलिए, यद्यपि यह बहुत सीधा विषय है, तथापि उपयोगी होने के कारण, इतना लिखना हमने उचित समझा।

सम्पादकों के लिए स्कूल।

कुछ दिन हुए ग्रख़बारों में यह चर्चा हुई थी कि ग्रमेरिका में सम्पादकों के लिए एक स्कूल खुलनेवाला है। इस स्कूल का बनना शुरू हो गया; ग्रैर, इस वर्ष, इसकी इमारत भी पूरी हो जायगी; ग्रैर, ग्राशा है, कि स्कूल जारी भी इसी वर्ष हो जाय। ग्रमेरिका के न्यूयार्क प्रान्त में कोलम्बिया नामक एक विश्वविद्यालय है। वहीं इस स्कूल को खोल रहा है। जैसे क़ानून, डाक्टरी, इञ्जिनियरी ग्रैर कला-कौशल ग्रादि के ग्रलग ग्रलग स्कूल ग्रैर कालेज होते हैं; ग्रैर ग्रलग ग्रलग होकर भी किसी विश्व-विद्यालय से सम्बन्ध रखते हैं; वैसे ही सम्पादकीय विद्या सिखलाने का यह स्कूल भी कोलम्बिया के विश्व-विद्यालय से सम्बन्ध रक्खेगा। संसार में इस प्रकार का यह पहला ही स्कूल होगा।

ग्रैर कोई देश ऐसा नहीं जिसमें ग्रमेरिका के बराबर ग्रख़बार निकलते हों। मासिक ग्रैर साप्ताहिक ग्रख़बारों को जाने दीजिए, केवल दैनिक ग्रख़बार वहां से २००० से भी ग्रधिक निकलते हैं। इतने दैनिक ग्रख़बार दुनियां भर में मिला कर नहीं निकलते हैं! जहां ग्रख़बारों का इतना ग्राधिक्य है वहां ग्रख़बार-नवीसी का स्कूल खोलने की यदि ज़रूरत पड़े तो कोई ग्राश्चर्य्य की बात नहीं। ग्रमेरिका में जैसे ग्रैर व्यवसाय—रोज़गार—हैं, वैसेही ग्रख़बार लिखना भी एक व्यवसाय है। जो लोग इस व्यवसाय को करना चाहेंगे वे इस स्कूल में २ वर्ष तक रह कर सम्पादकीय विद्या सीखेंगे। जो लोग, इस समय, सम्पादकता कर भी रहे हैं वे भी, इस स्कूल में कुछ काल तक रह कर, सम्पादन-विद्या में कुशलता प्राप्त कर सकेंगे। इस स्कूल के लिए बीस लाख डालर धन एकत्र किया गया है; ग्रैर पचास हज़ार डालर लगा कर इसकी इमारत बन रही है। हरवर्ट विश्व-विद्यालय के सभापति इलियट साहब से पूछा गया था कि

इस स्कूल में कौन कौन विषय सिखाये जावें। इलियट साहब ने विषयों की नामावली इस प्रकार दी है—

प्रबन्ध-विषय। दफ़्तर की स्थिति-स्थापकता; प्रकाशक के कर्तव्य; अख़बार का प्रचार; विज्ञापन-विभाग; सम्पादकीय और सम्वाद-दाताओं का विभाग; स्थानीय, बाहरी और विदेशी समाचार-विभाग; साहित्य और समालोचना विभाग; राज-कर विभाग; खेलकूद और शारीरिक व्यायाम विभाग। इन सब विभागों के विषय में अच्छी तरह से शिक्षा दी जायगी; और प्रत्येक विषय की छोटी से भी छोटी बातों पर व्याख्यान होंगे।

कला-कौशल (कारीगरी) विषय। छापना, स्याही, काग़ज़, इल्यक्ट्रो टाइपिंग, स्टीरियो टाइपिंग, अक्षर-योजना, अक्षर ढालना, चित्रों की नक़ल उतारना, जिल्द बाँधना, काग़ज़ काटना और सीना इत्यादि।

क़ानून-विषय। स्वत्व-रक्षण (कापीराइट) विधि; दीवानी और फ़ौजदारी मानहानि विधि; राजद्रोह-विषयक विधि; न्यायालय के कार्यों की समालोचना-सम्बन्धी कर्तव्य; सम्पादक, प्रकाशक, लेखक और सम्वाददाताओं की ज़िम्मेदारी का विधान। सम्पादकीय कर्तव्याकर्तव्य अथवा नीति-विद्या। सम्पादकों की सर्वसाधारण से सम्बन्ध रखनेवाली ज़िम्मेदारी का ज्ञान। समाचारों को प्रकाशित करने में समाचारपत्रों के सम्पादक और स्वामी के मत-प्रदर्शन की सीमा। मत प्रकट करने में सम्पादक, प्रकाशक और सम्वाददाताओं का परस्पर सम्बन्ध।

अख़बारों का इतिहास। अख़बारों की स्वतन्त्रता इत्यादि।

फुटकर बातें। सर्व-सम्मत से स्वीकार किये गये विराम चिन्ह, वर्ण-विचार, संक्षेप-चिन्ह, शोधन-विधि आदि। पैराग्राफ़ और सम्पादकीय लेख लिखना; इतिहास, भूगोल, राज-कर, राज्य-स्थिति, देशव्यवस्था, गार्हस्थ्य-विधान और अर्थशास्त्र आदि के सिद्धान्तों के अनुसार प्रस्तुत विषयों का विचार करना।

इलियट साहब का मत है कि सम्पादक के लिए इन सब बातों का जानना बहुत ज़रूरी है। सत्य की खोज में जो लोग रत रहते हैं उनकी भी अपेक्षा सम्पादकों के लिए अधिक शिक्षा दरकार है। आज कल के सम्पादकों में सबसे बड़ी न्यूनता यह पाई जाती है कि वे सत्य के जानने में बहुधा हतसफल होते हैं; उनमें इतनी योग्यता ही नहीं होती कि वे यथार्थ बात को जान सकें। इतिहास के तत्व और दूसरे शास्त्रों के मूल सिद्धान्तों को भली भाँति न जानने के कारण सम्पादक लोग कभी कभी बहुत बड़ी ग़लतियां कर बैठते हैं।

सम्पादकों के लिए एक और भी गुण दरकार होता है। वह लेखन-कौशल है। इसका भी होना बहुत आवश्यक है। इसके बिना अख़बारों का आदर नहीं हो सकता। यह कौशल स्वाभाविक भी होता है और सीखने से भी आ सकता है। जिनमें लेखन-कला स्वभाव-सिद्ध नहीं होती उनको शिक्षण से तादृश लाभ नहीं होता। परन्तु स्वभाव-सिद्ध लेखकों को शिक्षण मिलने से उनकी लेखन-शक्ति और भी तीव्र हो जाती है।

इलियट साहब ने सम्पादक के लिए जिन जिन विषयों का ज्ञान आवश्यक बतलाया है उनका विचार करके, हम—हिन्दी के समाचारपत्र और मासिक पुस्तकों के सम्पादकों—को अपनी योग्यता का अनुमान करने में बहुत बड़ी विषमता दृग्गोचर होती है। अमेरिका के समान सभ्य और शिक्षित देश में जब सम्पादकों को उनका व्यवसाय सिखलाने की ज़रूरत है तब अर्द्धशिक्षित देशों की क्या कथा? इस दशा में, विचारा भारतवर्ष किस गिनती में है?

———

पुस्तक-परीक्षा।

भारतधर्म्म। यह मासिक पुस्तक है। दो वर्ष से बम्बई से निकलती है। मूल्य १ रुपया साल है। इसके इस वर्ष के तीन अङ्क जो हमारे पास आये हैं उन पर छपा है "सम्पादक-मनीषिमार्गग मण्डल"। परन्तु "मनीषिमार्गग" क्या चीज़ है, यह हमारी समझ में नहीं आया। यदि विद्वानों के मार्ग पर गमन करनेवाले मण्डल से अभिप्राय है तो ठीक है; परन्तु है बड़ा अटपटा नाम। वैद्यवर शङ्कर दाजी शास्त्री पदे के उद्योग से यह पुस्तक निकलती है। ये शास्त्री महाशय सद्वैद्य-कौस्तुभ नामक एक और भी मासिक पुस्तक जुलाई १९०३ से निकालने लगे हैं। उसका मूल्य २॥) है। परन्तु ये दोनों पुस्तकें साथ लेने से केवल २।।=) देना पड़ता है। भारत-धर्म्म किस विषय की पुस्तक है यह उसके नामही से सूचित है। इसमें तीन भाषायें रहती हैं—मराठी, हिन्दी और गुजराती। परन्तु जो तीन अंक हमारे पास हैं उनमें गुजराती बिलकुल नहीं है। पहले अंक में गुजराती पढ़नेवालों को सूचना है कि अगले अंक से उस भाषा में भी लेख आवैंगे; परन्तु यह वादा पूरा नहीं किया गया। भारतधर्म्म में लिथो के चित्र भी रहते हैं। मराठी के साथ हिन्दी और गुजराती की योजना करके सामयिक पत्र प्रकाशित करना प्रशंसनीय है। इससे हिन्दी-प्रचार की बहुत कुछ आशा है। इस पत्र का सम्पादन ऐसी योग्यता से होना चाहिए जिसमें मराठी और गुजराती भाषा के विद्वान् इसे प्रेम से पढ़ें। ऐसा होने से इसका प्रचार बढ़ेगा और हिन्दी की ओर पूर्वोक्त भाषाभाषी लोगों का ध्यान अधिक आकर्षित होगा।

❋

सद्वैद्यकौस्तुभ। शास्त्री जी ने यह मासिक पुस्तक बहुत अच्छी निकाली है। इसमें भी रङ्गीन चित्र रहते हैं। वनोषधि-विज्ञान और प्लेग संरक्षण नामक दो प्रकरण इसमें बहुत उपयोगी आरम्भ किये गये हैं। वनौषधियों के चित्र, उनके अनेक भाषाओं में नाम, उनके गुण, और उनके प्रयोग का इसमें अच्छा वर्णन रहता है। प्लेग-प्रकरण से भी मनुष्य बहुत लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक सर्वथा उपादेय है।

❋

हवाई नाव। काशी के भारतजीवन प्रेस ने इसे भेजा है। यह वहीं छपी है और। इसका मूल्य है। बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त ने इसे एक अंगरेज़ी पुस्तक से अनुवादित किया है। यह एक कल्पित कहानी है। एक घण्टा दिल बहलाने के लिए अच्छी है। हवा में उड़नेवाली एक कल्पनाप्रसूत नाव पर सवार होकर तीन आदमी आफ़रिका के एक अगम्य स्थान में हीरा ढूंढने गये हैं। उन्हीं का इसमें वर्णन है। मार्ग में उनको जो जो कठिनाइयां पड़ी हैं, और जो जो विलक्षण दृश्य उन्होंने देखे हैं, उन सब का इसमें उल्लेख है। पुस्तक पढ़ने में जी लगता है। इस उपन्यास के पढ़ने से कुछ ऐतिहासिक बातें भी मालूम होती हैं। यह और भी विशेषता है। जैसे उपन्यासों का प्रचार हिन्दी में आजकल है, उनकी अपेक्षा "हवाई नाव" के सदृश पुस्तकों को हम अच्छा समझते हैं। इस पुस्तक के दूसरे पृष्ठ में लिखा है—

"कुछ समय पहले कुछ लोग ब्रेज़िल (अफ़्रिका) के एक भाग को देखने गए थे"।

परन्तु ब्रेज़ील अफ़रिका में नहीं; किन्तु दक्षिणी अमेरिका में है। "निर्मता", "उपरोक्त" और "उद्योगे सफलः (लं) कार्य्यः (य्यम्)" आदि प्रयोग भी इसमें विचारणीय हैं।

❋

हिन्दू-गृहस्थ। श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई से ॥) में प्राप्तव्य। इसे श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार के सम्पादक महता लज्जाराम शर्म्मा ने लिखा है। यह एक सामाजिक उपन्यास है और वेङ्कटेश्वर समाचार में खण्डशः प्रकाशित हो चुका है। आख्यायिका रोचक है; उपदेशप्रद है और प्रायः निर्दोष है। कुसङ्ग का दुष्परिणाम, भाई का बन्धुप्रेम, पत्नी

का सतीत्व इसमें अति उत्तमता से दिखलाया गया है। इस उपन्यास के आरम्भ में एक भूमिका है। उसमें उपन्यासकार ने यह लिखा है कि यह एक कल्पित कहानी है। इसके लिखने की कोई तादृश आवश्यकता न थी; क्योंकि कोई भी उपन्यास पढ़ने में उसके कल्पित होने का जितनाही कम मनमें स्मरण हो उतनाही उसकी घटनाओं का असर अधिक होता है। एक बात और है। इस पुस्तक के टाइटिल पेज पर "शिक्षाजनक" लिखा है। हमारी समझ में इसकी भी कोई आवश्यकता न थी। कविता में रस का नाम स्पष्ट कह देना जैसे दोष है, आख्यायिका के विषय में यह कहना भी अनुचित है कि उससे कुछ शिक्षा मिलती है। इस सूचना के न करने में जो रस है वह करने में नहीं। किसीकी दुःशीलता के बुरे परिणाम को देखना ही उस मार्ग के न अवलम्बन करने की पूरी शिक्षा है। घटनाओं का वर्णन खुदही शिक्षा देता है कि अमुक काम का फल बुरा और अमुक का अच्छा होता है।

✲

पूना में हलचल। यह उसी पुस्तक की दूसरी आवृत्ति है जिसकी पहली आवृत्ति की एक प्रति बिना मँगाये हमारे यहां वी० पी० द्वारा भेजी गई; और भेजनेवाले महाशय को शिक्षा देने के लिए जिसके दाम वापस कर लेने में हमको डाकख़ाने के अधिकारियों को लिखना पड़ा। अन्त में भेजने वाले बाबू साहब को दाम वापस करनेही पड़े। यह पुस्तक यद्यपि हमको दूसरे मार्ग से प्राप्त हुई है और पहली की अपेक्षा इसमें न्यूनाधिकता भी है, तथापि इसके विषय में हम कुछ नहीं कहना चाहते। एक बात इस विषय में यह विचित्र हुई कि इस किताब की वी० पी० वाली प्रति भी हमारे पास रह गई और इसका मूल्य भी हमको वापस मिल गया। न डाकख़ानेवालों ही ने किताब वापस माँगी और न भेजनेवाले हज़रत को ही माँगने का साहस हुआ!

✲

रामचरितमानस। जनवरी १९०३ से आज तक सरस्वती में जिन पुस्तकों की समालोचना प्रकाशित हुई है, उनमें से एक को भी देखकर हमारा चित्त इतना प्रसन्न नहीं हुआ जितना आज रामचरितमानस को देखकर हुआ है। सरस्वती के वाचकों को शायद मालूम होगा, कि कई वर्ष से नागरी-प्रचारिणी सभा एक रामायण के सम्पादन में लगी थी। वह रामायण आज प्रकाशित हो गया। कहने की आवश्यकता नहीं, यह तुलसीदास-कृत रामायण है। सभा की एक बात जो हमको बहुतही पसन्द आई वह हम पहले ही लिखना चाहते हैं। वह इस ग्रन्थ का नाम है। तुलसीदास ने इसका नाम रामचरितमानस रक्खा था; और यह बात उन्होंने इसमें लिख भी दी थी; परन्तु लोग उसे भूल से गये थे। कई सौ वर्ष से चली आनेवाली इस भूल को, सभा ने तुलसीदास का रक्खा हुआ नाम प्रकाशित करके, बहुतही उचित संशोधन किया।

रामचरितमानस को—

१ महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी
२ बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०
३ बाबू राधाकृष्णदास
४ बाबू अमीरसिंह
५ बाबू कार्तिकप्रसाद

ने मिल कर सम्पादित किया है; और अन्तिम प्रूफ श्रीमान् सुधाकर द्विवेदी जी ने देखा है। यह सोने में सुगन्ध कहना चाहिए।

आज तक रामचरित मानस के जितने संस्करण हुए हैं सबमें पाठ-भेद पाया जाता है। बात यह है कि जिसके मनमें जो आया है, उसने वही छाप दिया है। फिर, "क्षेपकों की इतनी अधिकता, इस समय है, कि कहीं कहीं, मूल से प्रक्षिप्त कथाओं को पृथक् करना कठिन हो गया है। इस ग्रन्थ की कई आवृत्तियां बहुत अच्छी अच्छी भी निकलीं; परन्तु उनमें भी आक्षेप-योग्य अनेक बातें देखी जाती हैं। हर्ष है, अत्यधिक हर्ष है,

रामचरित-मानस इस विषय में, सबसे श्रेष्ठ है। जहां तक विदित होता है, इसका पाठ बहुत ही विश्वासनीय है; और जैसा तुलसीदास ने लिखा था वैसा ही है। इसमें किसी "क्षेपक" को स्थान नहीं मिला। इसके सम्पादन में स्वयं तुलसीदास के हाथ का लिखा हुआ राजापुरवाला अयोध्या-काण्ड काम में लाया गया है। और, स्वयं तुलसीदास के हाथ से हरताल लगा कर शुद्ध किये गये एक बाल-काण्ड से पाठ मिलाया गया है। यह बाल-काण्ड अयोध्या में एक साधु के पास मिला। इनके सिवाय और जिन प्राचीन पुस्तकों से सहायता ली गई है वे सब समग्र हैं। इनमें से एक सम्वत् १७०४ की और दूसरी १७२१ की लिखी हुई है। अर्थात् ये पुस्तकें तुलसीदास के मरने के अनन्तर ४० वर्ष के भीतर ही लिखी गई हैं।

रामचरितमानस के सम्पादन में जितनी पुस्तकों से सहायता ली गई है उनके पाठान्तर भी फुट-नोट में दे दिये गये हैं। जो पाठ प्रधान और विशेष शुद्ध जान पड़ा है उसे मुख्य स्थान दिया गया है। इस ग्रन्थ में एक विशेषता यह भी है कि सब सामासिक शब्द अलग अलग न रखकर एक में मिला दिये गये हैं। यह भी बहुत अच्छी योजना हुई है।

रामचरितमानस में एक बात ऐसी है जो आज तक कहीं किसी रामायण में नहीं देखी गई; और, भविष्य में, न कहीं अन्यत्र देखे जाने को सम्भावना है। वह इसके हाफ-टोन मनोमोहक चित्र हैं। उनकी संख्या दो चार नहीं; ७० से ऊपर है। ये चित्र महाराजा बनारस* की सचित्र रामायण से लिये गये हैं। सुनते हैं, इस सचित्र रामायण में सोने चाँदी के काम से अलंकृत कोई ५०० चित्र हैं; और उनके बनाने में डेढ़ लाख रुपया लगा है! उन्हीं चित्रों से चुनकर, अच्छे अच्छे चित्र रामचरितमानस में दिये गये हैं। उनसे इस पुस्तक की शोभा बहुतही बढ़ गई है। कोई कोई चित्र बहुत ही सुन्दर और भाव-भरे हैं। वे सब रङ्गीन हैं; और प्रत्येक चित्र के नीचे, उसके वर्णन के सूचक तुलसीदास के पद्य—दोहा, चौपाई आदि—हैं।

तुलसीदास की जीवनचरित-सम्बन्धी जो जो बातें आज तक उपलब्ध हुई हैं, वे सब इसके आदि में हैं। यह जीवनचरित कोई १०० पृष्ठ में है। तुलसीदास के विषय में आज तक जो कुछ ज्ञात हुआ है वह सब इसमें है। उनके ग्रन्थों के विषय में अनेक बातें हैं जिनसे तुलसीदास के जीवन की कितनीहीं घटनाओं का पता लगता है। पुस्तक के अन्त में, कोई ७० पृष्ठ में, रामचरितमानस के कथा-भाग-सम्बन्धी नोट्स् हैं। उनमें वाल्मीकि, अजामिल, चित्रकेतु, नहुष, वेणु, नारद आदि की कथायें हैं; तथा तुलसीदास जी ने जिन पौराणिक प्रसङ्गों का उल्लेख अपने ग्रन्थ में किया है, उनका भी विवरण है। रामचरितमानस में काण्डों का नाम सोपान रक्खा गया है; और तुलसीदास के अनुसार यही नाम ठीक भी है। प्रत्येक सोपान के आरम्भ में जो संस्कृत श्लोक हैं उनका भावार्थ भी हिन्दी में लिख दिया गया है। यह भी उचित हुआ है।

नोट्स्, जीवनचरित और भूमिका को छोड़कर रामचरितमानस की पृष्ठ-संख्या ६०० से ऊपर है। काग़ज़ चिकना और पुष्ट है। अक्षर बहुत बड़े हैं। प्रत्येक पृष्ठ में २२ सतरों से अधिक नहीं हैं। हर पृष्ठ में सुन्दर बार्डर (किनारा) है। छपाई का तो कहना ही क्या है। सरस्वती के पढ़नेवाले इण्डियन प्रेस की छपाई देखतेही हैं। पुस्तक की जिल्द सुनहरे कपड़े से बँधी है और उसपर रुपहले बेल बूटे का मनोहर काम किया हुआ है, जिसे देखकर चित्त बहुतही प्रसन्न होता है; छोड़ने को जी नहीं चाहता। इण्डियन प्रेस, प्रयाग से, यह पुस्तक मिलती है। मूल्य इसका ८) रुपये अधिक नहीं मालूम होता है; ग्रन्थ के गुणों का विचार करके हम तो उसे अमूल्य ही कहेंगे। पुस्तक अद्वितीय है और सर्वथा संग्रह करने योग्य है।

* महाराजा साहब का चित्र, जो रामचरितमानस में भी छपा है, इस संख्या के साथ हम सरस्वती के वाचकों को उपहार देते हैं।

हम चाहते थे कि इसमें हमें कोई दोष न मिलै; जिसमें हम इसकी निर्दोषता ही को दोष बतला सकें। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। दोष इसमें रह गये हैं। उनमें से बहुत तो प्रूफ संशोधन में असावधानता के कारण हुए हैं। यथा—

पृष्ठ ६०२—बिज्ञानभक्तिप्रदं। इसमें 'बिज्ञान' के स्थान में 'विज्ञान' होना चाहिए।

पृष्ठ ३८९—पिवन्ति सततं। यहां पिवन्ति में 'व' के स्थान में 'ब' शुद्ध होगा।

पृष्ठ ८२ (जीवनचरित)—रामायण के प्रामाणिकता। 'के' की जगह 'की' चाहिए।

और भी कई दोष हैं—

पृष्ठ ३८९–सद्धर्म्मवर्म्मौ। हमने जितनी पुस्तकें देखी हैं सबमें 'सद्धर्म्मवन्तो' पाठ है। इस पाठ में तुलसीदास के व्याकरण-प्रमाद का भी निरसन हो जाता है। परन्तु सम्पादकों ने 'वर्म्मौ' के स्थान में 'रक्षौ' पाठ अच्छा बताया है।

पृष्ठ १९१–श्रीराम का बन्दना किया है। चाहिए–श्रीराम की बन्दना की है।

पृष्ठ १७ (जीवनचरित)—

(१) लीला समाप्त होने पर लौटे } इन वाक्यों में कर्ता
(२) रामलीला के स्थान पर आये } रह गया है।

पृष्ठ १८ (जीवनचरित)—

जब २६१वें दोहे तक पहुंचे तो। यहां 'तो' की जगह 'तब' चाहिए।

पृष्ठ ५७ (जीवनचरित)

(१) पंचों में बड़ा मान्य हुआ } 'मान्य' के स्थान में
(२) मेरा मान्य मुनियों कासा है } 'मान' होना चाहिये

जहां, संस्कृत-श्लोकों के अनुवादों के उदाहरण, जीवनचरित में, दिये गये हैं, वहां

गिरा अनयन नयन-बिनु बानी

इस उक्ति को नन्ददास की उक्ति से मुक़ाबिला करके देवीभागवत के—

या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति

इस श्लोकार्द्ध को भी लिख देना चाहिए था; क्योंकि तुलसीदास की उक्ति इसीका भावार्थ है।

परन्तु ये त्रुटियां कोई त्रुटियां नहीं। इनसे रामचरितमानस की शोभा, योग्यता और उपयोगिता को कुछ भी धक्का नहीं पहुंचा। एक कवि के वचन का यदि हम अनुसरण करें, तो हमको उलटा यह कहना पड़ैगा, कि ये त्रुटियां इस मानस की निर्मलता की सविशेष परिचायक हैं। क्योंकि–

अधौतवस्त्रे चतुरं कथं वा
विभाव्यते कज्जलबिन्दुपातः।

विनोद और आख्यायिका।

लार्ड चार्ल्स बेरस्फर्ड इङ्गलैण्ड में एक बहुत बड़े ख़ानदानी अमीर हैं। आप बड़े शिकारी हैं। आपके बाप भी बड़े शिकारी थे। लड़कपनही से उनको शिकार का शौक़ था। वे पादरी थे; परन्तु एक दिन रविवार तक को वे शिकार के लिए जाने को तैयार हुए। पादरियों के लिए एक तो शिकार ऐसेही निषिद्ध है, फिर रविवार को तो और भी। अतएव पादरी साहब के एक मित्र ने उनसे कहा—"क्यों साहब, क्या हमारे महात्मा साधु रविवार को भी शिकार मारते थे"? इसपर पादरी साहब ने तुरन्त उत्तर दिया–"नहीं। शायद, इस दिन वे और शिकार तो नहीं मारते थे; परन्तु, यह मैं बख़ूबी जानता हूं कि मछली वे ज़रूर मारते थे"! ईसाइयों के पहले बारह गुरु महात्मा कहलाते हैं। उन्हीं लोगों ने बाइबल को सम्पादन किया है। वे प्रायः मछुवे थे। इसी बात को ध्यान में रखकर पादरी साहब ने यह उत्तर दिया।

✲

सेंधिया के पूर्वज पूना के पेशवों के ख़िदमतगार थे। एक बार महादजी सेंधिया पूना गये। यह बड़े वीर थे और बड़े चतुर थे। पानीपत की लड़ाई

में ये लङ्गड़े हो गए थे; तब से अच्छी तरह चलने न पाते थे। पूना में पेशवाओं के सरदारों ने इनकी बुद्धि की परीक्षा करनी चाही। इसके लिए उन्होंने एक युक्ति निकाली। उन्होंने निश्चय किया कि कल पेशवा की सवारी हाथी पर सवार होकर बाहर निकलैगी और सब सरदार हाथी के पीछे पैदल चलेंगे। यह समाचार जब महादजी को मिला तब उनको बड़ी चिन्ता हुई। लङ्गड़े होने के कारण यदि वे घोड़े पर चलें तो भी अनुचित, क्योंकि, और सब लोग पैदल चलेंगे; और यदि पैदल चलना चाहैं तो चल न सकैंगे; चलेंगे भी तो पीछे रह जायंगे। यह उनके लिए अपमान की बात होगी। अन्त में उनको एक युक्ति सूझी और उसके अनुसार कार-रवाई करके वे इस संकट से छूट गये। जब पेशवा हाथी पर सवार होने लगे तब महादजी ने झट उनके जूते हाथ में उठा लिए और उनको लिए हुए वे पेशवा के पीछे हाथी पर सवार हो गए। जूते उठाना और मालिक के साथ रहना ख़िदमतगारों का कामही होता है; इसलिए इसमें महादजी का कोई अपमान न था। उनकी इस चतुरता को देख कर पेशवा की सरदार-मण्डली ने उनकी बड़ी प्रशंसा की।

मनोरञ्जक श्लोक।

आयुः प्रश्ने दीर्घमायुर्वाच्यं मौहूर्तिकैर्द्विजैः।
जीवन्तो बहु मन्यन्ते मृताः पृच्छन्ति के पुनः॥

ज्योतिषियों से यदि कोई पूछै कि हमारी उमर कितनी है, अर्थात् हम कितने दिन जीते रहैंगे, तो उनको कहना चाहिए कि आपकी बड़ी उमर है; आप दीर्घायु हैं। यदि वे जीते रहैंगे तो उनका सर्वदा मान करैंगे और यदि मर जायँगे तो उलाहना देने थोड़े ही आवैंगे।

✲

सरसो विपरीतश्चेत्सरसत्वं न मुञ्चति।
साक्षरा विपरीताश्चेद्राक्षसा एव केवलम्॥

जो लोग सरस (अर्थात् रसिक) हैं वे यदि विपरीत होगए तोभी वे सरसता को नहीं छोड़ते; परन्तु जो लोग साक्षर (अर्थात् 'ज्ञानलवदुर्विदग्ध') हैं, वे यदि विपरीत हुए तो साक्षात् राक्षस हो जाते हैं। 'सरस' का उलटा 'सरस' ही रहता है परन्तु 'साक्षराः' का उलटा 'राक्षसः' हो जाता है।

✲

दोषाकरः शिरसि तेऽस्ति गले द्विजिह्वः
पाषाणजा सहचरी पशुरान्तरङ्गः।
दुःखं निवेदयति को मम दीनबन्धो!
त्वञ्चेत्त्रिलोचन! निमीलितलोचनोऽसि॥

एक कवि शङ्कर से कहता है—आपके शीश में दोषाकर (दोषों की खानि तथा चन्द्रमा) है; गले में द्विजिह्व (चुगलखोर तथा सर्प) है; सहचरी आपकी पर्वतकन्या (अतएव कठोरहृदया) है, सेवक (नन्दी) आपका पशु है। इस लिए हे दीनबन्धो! यदि आप भी आंखें बन्द करके (ध्यानस्थ हो) बैठ जायँगे, तो, कहिए, हमारा दुःख कौन जाकर आपसे कहैगा?



स्वर्गवासी लाल बलदेव सिंह ।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

१९०४

भाग ५.] फ़रवरी १९०४ [संख्या २

विविध विषय।

खेती से सम्बन्ध रखने वाली कलों के बनाने में अमेरिका की बराबरी कोई देश नहीं कर सकता। कृषि-विद्या में अमेरिका ने आश्चर्य्यमयी तरक्की की है। वहां की कोई कोई कलें बड़ीही अद्‌भुत हैं। वे आपही आप चलती हैं। उनको काम करते देख यह सन्देह होता है कि वे सजीव और सज्ञान हैं। उनके दाने चारे का प्रबन्ध रखना और उनको चलतीभर कर देना चाहिए। फिर वे आपही आप बीज बो देती हैं; घास खोदती हैं, काटती है; गट्ठे बांधती हैं; और भूसा और दाना अलग अलग कर देती हैं।

***

बीज बोने के लिए जो कल है वह बड़ी ही विलक्षण है। उसके बनाने में बनानेवाले ने अपूर्व बुद्धि-वैभव ख़र्च किया है। वह सब प्रकार के बीज बो सकती है। जिस काम के लिए वह बनाई गई है उसे वह बहुत अच्छी तरह करती है। उसके काम में कभी भूल नहीं होती। जहां पर बीज डालना चाहिए वहीं पर वह डालती है; एक इञ्च भी वह इधर उधर नहीं होने पाता। बीज न कहीं अधिक पड़ता है, न कम, सब कहीं बराबर। वह ऐसी बुद्धिमानी से अपना काम करती है कि अच्छे से अच्छा तजरुबा रखने वाला किसान भी वैसा नहीं कर सकता।

***

बोने की कल में केवल बीज भर देना पड़ता है। कल के साथ एक गाड़ी लगी रहती है; उसी में बीज भर दिया जाता है। बीज भरने ही के लिए मनुष्य की सहायता दरकार होती है। इस कल में एक ऐसा यन्त्र रहता है जो खेत को नापते भी जाता है और यह भी बतलाता रहता है कि कितने बीघे अथवा कितने बिस्वे में बीज डाला गया। यह कल बीज को छिटका कर भी बोती है; बराबर बराबर दूरी पर कुँड़ों में भी बोती है;

श्रोर दो दो तीन तोन प्रकार के बीजों को भी एक दूसरे के बाद यथेच्छ प्रकार पर बोती है। इस प्रकार उलटे सीधे बोने में वह कभी ग़लती नहीं करती। इच्छा करने से ज्वार, बाजरा, मूंग, उरद आदि बीजों को एक दूसरे के बाद वह ठीक ठीक बो देती है। ख़ास ख़ास क़िसम के बीजों को बोने के लिए ख़ास ख़ास क़िसम की कलें हैं। कोई कोई कलें पहले खेत में एक छोटासा गहरा गड्ढा कर देती हैं; फिर उसमें बीज डाल देतो हैं; फिर उस बीज को मिट्टी से ढक देती हैं; श्रोर साथही आगे बीज डालने के लिए दूसरे गड्ढे का निशान भी कर देतो हैं। कोई कोई ऐसी हैं कि वे बोने के साथ साथ खाद भो डालती जाती हैं।

***

आलू बोने को जो कल है उसके काम को देख कर अक़्ल हैरान होती है। वह आलुवों को पहले उठाती है। उनके दो, तीन, चार, अथवा जितने दरकार होते हैं, टुकड़े काटती है। आलुवों में जो आंखें सी होती हैं उनको वह अलग कर देती है। फिर वह उनको बोती है। बोने में वह बीज को, कल चलनेवाले की इच्छा के अनुसार, दूर अथवा नज़दीक डालती जाती है। बीज डाल कर उसे वह मिट्टी से ढकती है; ढक कर खाद डालती है; श्रोर खाद डाल कर उस जगह को थोड़ा सा थप थपा कर वह आगे बढ़ती है।

***

कोई कोई पौधे एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगाये जाते हैं। इसके लिए भी कल है। यह कल पौधों को बड़ी होशियारी से उखाड़ती है। उखाड़ कर उन्हें वह दूसरी जगह लगाती है। फिर वह धीरे धीरे उन पर मिट्टी डाल कर उस जगह को दबाती है; श्रोर दबाकर पौधे को ख़ूब पानी पिलाती है। कलके साथ एक हौज़ रहता है; इसमें पानी भरा रहता है। वहां पानी वह पौधों पर डालती है।

***

श्रोर कहां तक कहा जाय, कलें घास फूस इत्यादि को भी पहचानती हैं। यदि बीज ठीक अपनी जगह पर उगता है तो खेत में निराने की कल चलाने से उसको कुछ भी हानि नहीं पहुंचती; वह वैसाही बना रहता है; परन्तु बेमौक़े उगी हुई घास फूस को वह क्रोधित सी होकर उखाड़ फेंकती है। उन पर उसे ज़रा भी दया नहीं आती।

***

फ़सल तैयार होने पर वह कलोंही से काटी जाती है; कलोंही से बांधी जाती है। श्रोर कलें ही से मांड़ी जाकर दाना श्रोर भूसा अलग कर लिया जाता है। इसमें बहुत कम समय लगता है श्रोर बहुत अधिक काम होता है। एक किसान ने काटने की कल में घोड़े लगा कर खेत के किनारे खड़ा कर दिया श्रोर आप पानी पीने चला गया। इतने में घोड़े भड़के श्रोर खेत के भीतर दौड़ने लगे। इस दौड़ धूप में फ़सल आपही आप कटने लगी श्रोर कट कर उसके गट्ठे बँध बँध कर बाहर गिरने लगे। जब तक घोड़े पकड़े जावें तब तक २० बीघे खेत कल से कट गया श्रोर उसके गट्ठे बँध कर इकट्ठे हो गये। बीच में, यहां वहां, कुछ थोड़ा ही खेत कटने को रह गया। यह सब खेल कोई २४ मिनट में हो गया!

चतुर्भाषी।

सम्वाद बहुतही आनन्ददायक है; बहुतही उत्साह-वर्द्धक है; यों कहना चाहिए कि देवनागरी अक्षरों के व्यापक प्रचार का पहला सोपान है। मार्च से एक "चतुर्भाषी" पुस्तक निकलनेवाली है। यह त्रैमासिक होगी। इसमें इस देश की चार प्रसिद्ध भाषाओं में लेख रहेंगे—बँगला, मराठी, गुजराती श्रोर हिन्दी। भाषायें पृथक् पृथक् होंगी; परन्तु लिपि सबकी रहैगी नागरी। सरस्वती के वाचकों को स्मरण होगा, गत वर्ष, सरस्वती में "देश-व्यापक भाषा" नामवान् एक

लेख कई संख्याओं में निकला है। इस लेख में हिन्दी को व्यापक भाषा बनाने की बहुत बड़ी आवश्यकता दिखलाई गई है। इसका सारांश प्रयाग से निकलनेवाले बँगला "प्रवासी" के अग्रहायणवाले अङ्क में भी प्रकाशित हुआ है। "प्रवासी" के सम्पादक हैं श्रीयुक्त बाबू रामानन्द चट्टोपाध्याय, यम० ए०। आप कायस्थ-पाठशाला के अध्यक्ष (प्रिंसिपल) हैं। आपकी विद्वत्ता, आपका साहित्यानुराग, आपकी बहुदर्शिता निःसीम है। आपही "चतुर्भाषी" के जन्मदाता होंगे। अतएव कहने की आवश्यकता नहीं "चतुर्भाषी" वैसी ही योग्यता से सम्पादित होगा जैसी योग्यता से "प्रवासी" सम्पादित होता है। पूर्वोक्त भाषाओं के प्रसिद्ध प्रसिद्ध लेखकों के लेख इसमें प्रकाशित होंगे। "चतुर्भाषी" भी "इण्डियन प्रेस", प्रयाग में छपेगा। बंगालियों का हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि पर यह स्नेह बहुतही प्रशंसनीय है। और साथही हिन्दी बोलने वालों के लिए महा लज्जाजनक भी है। इस देश में, प्रायः सब बातों में, बंगाली ही पहले पहल अग्रसर होते हैं। देशानुराग, अध्यवसाय, विद्वत्ता आदि गुणों में और प्रान्तवालों से बंगाली बहुत बढ़े चढ़े भी हैं। अब जो उन्होंने नागरी लिपि की ओर ध्यान दिया है, तो आशा होती है कि उसके प्रचार में शीघ्रही उन्नति होगी। उसके द्वारा हिन्दी भाषा का भी क्रम क्रम से प्रचार बढ़ैगा। और ऐसा समय भी कदाचित् आवै, जब इस प्रान्त के अंगरेज़ी और फ़ारसीबाज़ विद्वानों के द्वारा हेय, निर्जीव और अनुपयोगी समझी गई, यह हमारी त्यक्तप्राय हिन्दी देश की व्यापक भाषा हो जाय। इस आशा का उल्लेख करके हम 'तथास्तु' कहते हैं। इस व्यवसाय में व्रती सज्जनों को जगदीश्वर दीर्घायु करै; उनकी मङ्गलमयी कामना को सफल करै; ईप्सित कार्य का आरम्भ कराके उसे निर्विघ्न चलाने में उनकी सहायता करै! जो हिन्दू हैं; हिन्दुस्तान को जो अपना देश समझते हैं; जिनके हृदय में अपने धर्म्म, अपनी भाषा और अपने देश का कुछ भी गौरव है, उनको उचित है कि वे "चतुर्भाषी" को लेकर उसके प्रकाशक और सम्पादक का उत्साह बढ़ावैं। "चतुर्भाषी" एक नई चीज़ है। वह देश के सर्व-व्यापक कल्याण का अंकुर-रूप है। अतएव उसके विषय में उदासीनता दिखलाना मानों स्वदेश से शत्रुता करना है। "चतुर्भाषी" का वार्षिक मूल्य ४) होगा उसमें सब १२८ पृष्ठ रहैंगे। प्रत्येक भाषा के लिए ३२ पृष्ठ रक्खे जावैंगे। उसके हिन्दी विभाग की सम्पादकता बनारस के बाबू राधाकृष्ण ने कृपा करके स्वीकार की है। अच्छा किया।

लाल बलदेवसिंह।

लाल बलदेवसिंह को हिन्दी से सविशेष प्रेम था। उन्होंने अधिकारियों की प्रतिकूलता का ख़याल न करके बहुत दिनों तक "भारत-भ्राता" को जारी रक्खा। हिन्दी के वे अच्छे अनुरागी थे; समाचार पत्रों से जो लाभ है उसे वे अच्छी तरह समझते थे। उनकी जीवन-सम्बन्धिनी दो चार बातें जो हमें मिली हैं उन्हें हम, यहां पर, प्रकाशित करते हैं।

लाल बलदेवसिंह के पिता, भूतपूर्व रीवां नरेश महाराजा रघुराजसिंह, जी० सी० यस० आई, के समय में, उनके दीवान थे। उनको मुख़तियारुलरियासत का ख़िताब था। लाल बलदेवसिंह का जन्म १८६८ ईसवी में हुआ। कुछ काल तक उन्होंने वर्तमान महाराजा के साथ विद्याध्ययन किया; परन्तु पीछे से, घरही पर, अँगरेज़ी, संस्कृत और हिन्दी का वे अभ्यास करने लगे; और इन भाषाओं में उन्होंने बहुत कुछ विज्ञता प्राप्त करली। जब उनके भाई लाल रमानुजप्रसादसिंह रीवां-राज्य के दीवान नियत हुए, तब लाल बलदेवसिंह को वहां के कमाण्डर-इन-चीफ़ अर्थात् प्रधान सेनानायक का उच्च पद मिला। इसके सिवाय

राज-सदन की देख भाल भी वे रखते थे, और महारानियों के काम काज का भी प्रबन्ध उन्हीं के सिपुर्द था। सेनानायकत्व का काम उन्होंने बड़ीही योग्यता से निबाहा; अन्त तक वे उस पद पर बने रहे।

लाल बलदेवसिंह को विद्या की अभिरुचि थी। उनके पुस्तकालय में अनेक उत्तमोत्तम और अलभ्य ग्रन्थ संगृहीत हैं। परन्तु हिन्दी से उनको सबसे अधिक प्रीति थी; उसे वे प्राणोपम प्यार करते थे। इसी प्रेम से प्रणोदित होकर उन्होंने "भारत-भ्राता" नामक एक हिन्दी का छापाख़ाना रीवां में खोला। कुछ काल के अनन्तर इसी नाम का वे एक साप्ताहिक पत्र वहां से निकालने लगे। इस पत्र को उन्होंने बहुत दिन तक, यथाशक्य अच्छी तरह, चलाया। मध्य-भारत में भारत-भ्राता ही एक समाचार पत्र था। जिन बातों से वह प्रजा का हित समझता था उन्हें वह निडर होकर प्रकाशित करता था। और जिनसे प्रजा का अहित था उनका उसमें सयुक्तिक और सप्रमाण खण्डन रहता था; फिर चाहे उससे किसी को कितनाही बुरा क्यों न लगै। सुनते हैं, इसी लिए, कई बार लाल बलदेवसिंह से भारत-भ्राता बन्द करने के लिए प्रार्थना की गई; फिर उनको सूचना दी गई; बाद में उनको आज्ञा तक दी गई। परन्तु उन्होंने, इन बातों का कुछ भी विचार न करके, पत्र को प्रचलित रक्खा। खेद है, उनकी यह दृढ़ता चिर-काल तक नहीं चली। उन पर, अन्त में, भारी दबाव डाला गया, जिसके कारण, उन्हें भारत-भ्राता को बन्दही करना पड़ा। पुराना पत्र होने पर भी भारतभ्राता का यद्यपि कम प्रचार था, तथापि उसका ख़र्च भली भाँति उसीसे चला जाता था। अतएव उसके बन्द होने का कारण रुपये पैसे की कमी न समझना चाहिए। लाल साहब ने इस पत्र को इस लिए न निकाला था कि वे उससे कुछ धन-सम्बन्धी लाभ उठावैं। भारत भ्राता का जन्म सर्व साधरण के फ़ायदे के लिए हुआ था। और जब तक वह जीवित रहा तब तक उसने इस उद्देश्य का निर्वाह भी किया।

गतवर्ष, अर्थात् १९०३ ई० में, रीवां में हैज़े का प्रचण्ड कोप हुआ। उससे पीड़ित होकर सैकड़ों आदमी काल की कुक्षि में धँस गये। लाल बलदेवसिंह के भी घर में उसने प्रवेश किया। उनकी पत्नी और बहन दोनों को हैज़ा होगया; परन्तु उन्होंने ऐसी दौड़धूप की; उनकी दवादारू का ऐसा शीघ्र और ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया कि वे आराम हो गईं। इस ख़ुशी में उन्होंने मई महीने में एक उत्सव किया। इस उत्सव में ख़ूब हवन, पूजन और ब्राह्मण भोजन हुए। बलिदान भी हुए। इसके दूसरे ही दिन लाल बलदेवसिंह पर भी हैज़े ने आक्रमण किया और उसीमें उनके जीवन की समाप्ति हुई। उनकी इस अकाल मृत्यु से रीवां राज्य में शोक छा गया।

लाल बलदेवसिंह की मृत्यु के अनन्तर उनकी पत्नी देवरा चली गईं। उनका कुटुम्ब वहीं रहता था। वहां उनको दुबारा हैज़ा हुआ। इस बार उसने उनके प्राण लेकर छोड़े। एक प्रकार उन पर उसने यह कृपा ही की। इससे बहुत दिन तक उनको पति-वियोग नहीं सहन करना पड़ा। शीघ्र ही वे अपने पति की अनुगामिनी हुईं। इस समय सेनानायक के कुटुम्ब में उनका एक अल्पवयस्क पुत्र शेष है। प्रचलित रीति के अनुसार शायद इस बालक को यथा-समय रीवां का सेनानायकत्व मिलै; क्योंकि, वहां ऐसे ऐसे पद पिता से पुत्र को वंशपरम्परागत प्राप्त होते हैं।

पण्डित भवानीदत्त जोशी, बी० ए०, ने लाल बलदेवसिंह की मृत्यु पर शोक प्रकाश करते हुए कुछ कविता की है। उसका एक पद्य हम नीचे उद्धृत करते हैं।

हा हा बघेलकुलदीपक हाय हाय !
हा देवराधिपति* के प्रिय बन्धु हाय !

* "देवरा" श्री महाराजकुमार लाल रमानुजप्रसादसिंह, सी० आई० ई०, की जागीर है। वहीं पर इनका घर भी है।

हा राज्य के सकल-सैन्य अधीश हाय !
हा बन्धवाधिपति के प्रिय भक्त हाय !

लाल बलदेवसिंह की बात का लोगों पर बड़ा प्रभाव होता था। वे सेना के ही नेता न थे; अपने प्रान्त की प्रजा के मत के भी नेता थे। सब लोग उनको सम्मान की दृष्टि से देखते थे। उनका स्वभाव बहुत सरल था; वे सदैव प्रसन्नचित्त देख पड़ते थे। दया की मात्रा भी उनमें कम न थी। दानपात्रों को देने और साहाय्य की इच्छा रखने वालों की सहायता करने में वे सदा तत्पर रहते थे। उनका व्यवहार और उनका आचरण प्रशंसनीय था; उनमें उपकारप्रियता विशेषरूप से विद्यमान थी। वे सुशील थे, मिष्टभाषी थे और सभा-चतुर भी थे। ऐसे गुणसम्पन्न पुरुष का इतनी थोड़ी उमर में मरना बड़े खेद की बात है।

झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई।

[२]

१८५५ में दामोदरराव सात वर्ष के हुए। अतएव उनका यज्ञोपवीत करने की आवश्यकता हुई। परन्तु इसके लिए रुपया न था। इससे लक्ष्मी बाई ने गवर्नमेण्ट से गङ्गाधरराव के ६ लाख रुपयों में से एक लाख रुपये माँगे। परन्तु गवर्नमेण्ट ने बिना ज़मानत के रुपया देना अस्वीकार किया। गवर्नमेण्ट ने कहा कि बड़े होने पर यदि दामोदरराव इस रुपये का दावा सरकार पर करें तो झगड़ा खड़ा हो सकता है। इसलिए निरुपाय होकर रानी साहब को ज़मानत देनी पड़ी। ज़मानत देने पर उनको एक लाख रुपया मिला और वही दामोदरराव के यज्ञोपवीत में ख़र्च हुआ।

इस प्रकार रानी साहब अपने दिन काट रही थीं कि १८५७ ईसवी का महादुःखद प्रसङ्ग आया। उसने रानी साहब के देह की आहुति लेकर हज़ारों मनुष्यों का नाश किया और दामोदरराव के सर्वस्व का और सुख का भी विनाश कर डाला। विद्रोह के चिन्ह झांसी में पहले कोई न देख पड़ते थे; परन्तु १ जून १८५७ को अँगरेज़ो बंगलों में आग लगने लगी और ४ तारीख़ को विद्रोह आरम्भ हो गया। उस समय झाँसी में कोई एक हज़ार के लगभग देशी फ़ौज थी और बालबच्चों समेत कोई सत्तर अस्सी अँगरेज़ थे। पहले सब साहब लोग छावनी छोड़ कर शहर में आये; फिर क़िले में चले गये। अँगरेज़ों ने ऐसे दुर्धर प्रसङ्ग में बड़ी वीरता दिखलाई! कई दिन तक वे असह्य दुःख सहन कर लड़ते रहे। दो तीन साहब लोगों को उन्होंने रानी साहब के पास सहायता माँगने भेजा; परन्तु विद्रोहियों ने उनको बीच ही में पकड़ कर काट डाला। जब क़िले के भीतर कई अँगरेज़ मारे गये और युद्ध की सामग्री भी न रही तब उन्होंने युद्ध बन्द करने का झण्डा खड़ा किया। फिर झाँसी के कमिश्नर स्कीन साहब फाटक के बाहर आये और उन्होंने विद्रोहियों से कहा कि वे उनको सुरक्षित सागर पहुँचा देवें। विद्रोहियों ने अभय वचन दिया; परन्तु पीछे से हथियार रखवा कर उन अधम पापियों ने सबका शिरश्छेद किया; यहां तक कि स्त्रियों और बच्चों तक को भी न छोड़ा! इसका बदला जो झाँसीवालों को देना पड़ा उसका स्मरण करके शरीर स्तम्भित हो जाता है; रोमाञ्च हो आता है; और कलेजा काँपने लगता है। इस वध में झाँसी के जेल के मुसल्मान दारोग़ा ने बड़ी ही क्रूरता की।

इस नरहत्या में रानी साहब बिलकुल शामिल न थीं। जहां तक प्रमाण मिलते हैं तहां तक यही सिद्ध होता है कि विद्रोह के समय रानी साहब ने अँगरेज़ों को सहायता ही दी है। जून में जब विद्रोह के लक्षण दिखलाई देने लगे तब एक दिन झाँसी के डेप्युटी कमिश्नर गार्डन साहब लक्ष्मी बाई से मिले, और उनसे सहायता माँगी। लक्ष्मी बाई ने कहा कि यदि हम खुल्लम खुल्ला आप की सहायता करेंगी तो ये विद्रोही सिपाही हमारा घर द्वार सभी जला देंगे और हमको बहुत तङ्ग

करेंगे; परन्तु जहां तक हो सकेगा हम आपकी सहायता करेंगी। उस समय उनके पास सौ ही दो सौ मनुष्य थे। इसलिए गार्डन साहब की आज्ञा से उन्होंने और थोड़े मनुष्य भरती किये। जब सिपाहियों ने विद्रोह आरम्भ कर दिया तब साहब लोगों ने अपनी स्त्रियां और बालबच्चे रानी साहब के यहां भेज दिये। रानी साहब ने उनको दो तीन दिन अच्छी तरह रक्खा। जब विद्रोहियों ने छावनी जला दी और सब साहब लोग क़िले के भीतर चले गये तब उन्होंने अपने बालबच्चों का रानी साहब के यहां रहना सुरक्षित न समझा। इसलिए स्त्रियों और बालबच्चों को वहां से वे क़िले में ले आये। क़िले में भी कई दिन तक रानी साहब खाने पीने का सामान भेजती रहीं। उनकी मदद के लिये कुछ सिपाही भी उन्होंने भेजे; परन्तु वे लौटाल दिये गये। उन्होंने साहब लोगों से दतिया चले जाने की भी सिफ़ारिश की; परन्तु उनकी बात किसी ने न मानी। अन्त में सब साहब लोग विद्रोहियों द्वारा मारे गये। इन सब बातों का प्रमाण है; कोई बात बिना प्रमाण के नहीं। और और प्रमाणों के सिवा, एक मार्टिन नामक साहब ने अपनी आँखों देखी बातों का वर्णन करके रानी साहब की निरपराधता सिद्ध की है। यह साहब शायद अभी जीवित हैं। २० अगस्ट १८८९ को उन्होंने आगरे से दामोदरराव को एक पत्र लिखा है। उसमें ये सब बातें उन्होंने लिखी हैं। इस पत्र की यथातथ्य नक़ल हम फुटनोट में देते हैं*। सिपाही विद्रोह के प्रसिद्ध इतिहासकार के साहब ने भी लिखा है कि अँगरेज़ों की हत्या में रानी साहब का कोई मनुष्य शामिल न था। परन्तु इस विद्रोह के पहले ऐसी अनेक बातें होचुकी थीं जिनके कारण गवर्नमेण्ट को यह विश्वास हो गया कि रानी साहब विद्रोहियों से मिली हुई हैं और उन्होंने यह हत्या कराई है। उनके राज्य का छीन लिया जाना, दत्तक विधान का नामंज़ूर किया जाना, उनके पति का ६ लाख रुपया सरकारी ख़ज़ाने में जमा हो जाना, और माँगने पर बिना ज़मानत एक लाख का भी वापस न दिया जाना—ऐसी बातें हैं जिनका विचार करके मनुष्य को सहजही सन्देह हो सकता है। इसीलिए गवर्नमेण्ट को रानी साहब की मित्रता पर अविश्वास हो गया।

निरपराध साहब लोगों का ख़ून करके विद्रोहियों ने रानी साहब से, देहली जाने का ख़र्च, तीन लाख रुपया माँगा। रानी साहब ने अपनी दैन्यावस्था दिखलाई और राज्य और राज्य का ख़ज़ाना चला जाने से इतना रुपया देने में अपनी असमर्थता प्रकट की। इसपर उनलोगों ने उनका महल तोपों से उड़ा देने की धमकी दी। जब कोई और उपाय न देख पड़ा तब रानी साहब ने अपनी निज की सम्पत्ति से एक लाख रुपये का धन उनको देकर अपना पिण्ड छुटाया।

विद्रोहियों के चले जाने पर झाँसी में गवर्नमेण्ट के प्रबन्धकर्ताओं में से किसीके न रह जाने के कारण रानी साहब ने इलाक़े का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया। उन्होंने कमिश्नर और डेप्युटी कमिश्नर के शरिस्तेदारों को बुलाकर उनसे सलाह ली। उनकी सम्मति से उन्होंने सागर के कमिश्नर को एक पत्र भेजा और उसमें झांसी की घोर हत्या और विद्रोह का सब हाल लिखा। उन्होंने कमिश्नर साहब को सावधान रहने के लिए भी सम्मति दी। उस समय तक सागर में झांसी के विद्रोह की बात न पहुँची थी। इस पत्र को पाकर वहां के अधिकारी सावधान होगये

* Your poor mother was very unjustly and cruelly dealt with; and no one knows her true case as I do. The poor thing took no part whatever in the massacre of the European residents of Jhansi in June 1857. On the contrary she supplied them with food for 2 days after they had gone into the fort, got 100 match-lock-men from Karrera, and sent them to assist us; but after being kept a day in the fort, they were sent away in the evening. She then advised Major Skene and Captain Gordon to fly at once to Dattia and place themselves under the Raja's protection. But this even they would not do; and finally they were all massacred by our own troops, the Police, the Jail and cos : est.